अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रांति का संदेशवाहक

वार्षिक मूल्य ६) ॥ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार ॥ एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-५ ॥ राजघाट, काशी ॥ शुक्रवार, २ नवंबर, '५६

कोई भी क्रांति कौनसा मोड़ लेगी और कौनसा रूप धारण करेगी, यह जानना असंभव है। उसे कोई रोक भी नहीं सकता। प्रक्षुब्ध महासागर पर उत्ताल तरंगें उछलती रहती हैं, लेकिन वे कैसी उछलें, क्या यह कोई बता सकता है? झंझावात की गति को क्या मानव-बुद्धि रोक सकती है? किसी भी क्रांति के सूत्र परमेश्वर के सर्वज्ञ-संकल्प में होते हैं। उस सर्वज्ञ के द्वारा चुने हुए एक साधन, एक हस्तक भर हम हैं। इससे अधिक अपने को मान लेने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अपना कार्य समाप्त हुआ समझ कर 'इतना तो कम से कम करने के लिए मिला ही,' यह मान कर आनंद महसूस करना चाहिए।

'वंदेमारतम्', १९०७ —श्री अरविंद

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव

(विनोबा)

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव यहाँ उपस्थित है। उस पर आप सोचें। उससे विचार-विकास होगा। कोई अगर उसे नहीं पसंद करता है, तो दबाव से उसे वह न माने। हम शासन को नहीं, शिक्षण को मानते हैं। सर्व-सेवा-संघ और सर्वोदय-समाज आज्ञा करने वाली संस्था भी नहीं है। जहाँ शासन होता है, वहाँ अनुशासन-भंग की कार्यवाही भी होती है। इस समाज में हम वह नहीं करते हैं। चर्चा करते हैं, विचार-स्वातंत्र्य रखते हैं। जहाँ विचार की आजादी न हो, दूसरे प्रकार की आज़ादी हो, उसकी बहुत ज्यादा कीमत हम नहीं मानते। इस प्रस्ताव से हम कोई आदेश नहीं दे रहे हैं। हर एक को अपना-अपना दिमाग है और उससे बरतने की उसे आज़ादी है। सर्वोदय-विचार में मानने वाला अपने विचारों का प्रकाशन देश के सामने करता है।

उन्नीसवीं सदी में इंग्लैंड में एक तत्त्वज्ञान निर्माण हुआ। वह था—Greatest good of the greatest number. याने सबका भला नहीं, "अधिक से अधिक संख्या का अधिक से अधिक भला।" तो अधिक संख्या की भलाई के लिए अगर किसीका खून करना पड़ा, किसीकी आहुति देनी पड़ी, तो वह दे सकते हैं! सर्वोदय इस तत्त्वज्ञान से बिलकुल ही भिन्न विचार रखता है, यह 'सर्व' शब्द ही प्रकट करेगा। किसी भी मनुष्य का सच्चा हित किसी दूसरे मनुष्य के सच्चे हित के विरुद्ध हो नहीं सकता। मेरा आरोग्य, मेरी विद्या, मेरी क्षमा आपके आरोग्य, आपकी विद्या, आपकी क्षमा से विरुद्ध हो नहीं सकती। मेरी हृदयशुद्धि आपकी हृदयशुद्धि के विरुद्ध नहीं हो सकती। लेकिन गलती से मैं चोरी करने में अगर अपना भला मानूँ, तो उससे विरोध पैदा होगा। शेर समझता है कि खरगोश को खाने में उसका भला है और खरगोश समझता है कि शेर के पंजे से छूटने में उसका भला है, इसलिए दोनों का विरोध आता है! परंतु 'मानव-समाज' में कभी भी एक व्यक्ति के हित के विरुद्ध दूसरे का हित नहीं हो सकता! इसलिए हमें सबका हित साधना चाहिए। इसमें 'अधिक से अधिक संख्या' और 'कम से कम संख्या' का खयाल ही नहीं हो सकता।

सत्य-दर्शन बनाम बहुसंख्या

केवल सत्यदर्शन का ही खयाल हो, तो हम यह नहीं कह सकते हैं कि ज्यादा संख्या वालों को सत्यदर्शन होता है! सत्यदर्शन का, अधिक और कम संख्या से कोई संबंध नहीं है। एक मनुष्य भी अपने सत्यदर्शन के लिए, सारे समाज के विरोध के सामने खड़ा हो सकता है, उसे खड़ा होने का हक है। इसीको सत्याग्रह का हक कहते हैं। सत्याग्रह का न सिर्फ हक होता है, बल्कि सत्याग्रह का कर्तव्य भी होता है। किसीके सत्यदर्शन को बहुसंख्या से या और किसीसे दबाया नहीं जा सकता। मान लीजिये कि शिक्षक ने गणित का एक सवाल पूछा और पंद्रह विद्यार्थियों ने गलत जवाब दिया, दो ही विद्यार्थियों ने सही दिया, तो क्या उस सवाल का निर्णय बहुसंख्या से होगा? इसलिए सत्यदर्शन का बहुसंख्या के साथ कोई संबंध नहीं है। उसी तरह, जहाँ सबकी भलाई की बात है, वहाँ किसीके भी हित की हानि नहीं होनी चाहिए, सबका हित सधना चाहिए। यही सर्वोदय-विचार है।

"अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक भला" वाला विचार एक असद् विचार है। उसके परिणामस्वरूप दुनिया में अनेक प्रकार के राजनैतिक झमेले पैदा होते हैं। आज दुनिया के हर देश में बहुसंख्या विरुद्ध अल्पसंख्या का सवाल खड़ा है। पहले जो भेद थे, वे तो कायम ही हैं, परंतु उसमें और एक भेद का इजाफा हो गया है। परिणामस्वरूप दुनिया में शांति की स्थापना नहीं हो रही है, शस्त्रास्त्र बढ़ रहे हैं। इसलिए सर्वोदय-विचार मानता है कि शासन-मुक्ति की तरफ ही जाना होगा।

हम जानते हैं कि यह चीज एकदम से होने वाली नहीं है। अतः उसके लिए पहले शासन-विभाजन करना होगा। गाँव-गाँव के हाथ में सत्ता आनी चाहिए। गाँव की ग्रामसभा 'सबकी राय' से चुनी जायेगी, 'बहुसंख्या' से नहीं। ग्राम को अपना कुल कारोबार चलाने का हक होगा। गाँव वालों की इच्छा के विरुद्ध उन पर कोई माल लादा नहीं जायेगा। जहाँ पर दस-पंद्रह गाँवों के संयोजन का सवाल आयेगा, वहाँ ऊपरवाली संस्था काम करेगी। ऊपरवाली संस्था का चुनाव ग्रामसभा की तरफ से होगा, हर व्यक्ति की तरफ से नहीं होगा। इस

आज कुछ लोग यह मानते हैं कि चुनाव में वोट न देना याने कर्तव्य की हानि है, नागरिक के नाते अपना कर्तव्य पूरा न करना है! वे जिस दृष्टि से सोचते हैं, उस दृष्टि से यह ठीक है। परन्तु हम अपने को केवल हिंदुस्तान के नागरिक नहीं मानते हैं, बल्कि विश्वमानव, विश्वनागरिक समझते हैं। वह समाज आज हिंदुस्तान म मौजूद नहीं है और अन्य किसी देश में भी नहीं है। लेकिन हमें आज के समाज को उस समाज का रूप देना है। दूध को दूसरा रूप दही ही दे सकता है, इसलिए हमें दही बनना चाहिए। —विनोबा

प्रश्न :—पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हाल में अहमदाबाद में कहा कि जो लोग वोट नहीं देते हैं, वे नागरिक की जिम्मेवारी नहीं निभाते हैं। इस पर आप की क्या राय है?

धीरेंद्रभाई : उनकी दृष्टि से वह बिल्कुल सही है। जो लोग इस तत्त्व को मानते हैं कि राज्य-द्वारा ही समाज का नियंत्रण, संचालन, आयोजन तथा व्यवस्था करनी है, वे अगर राज्य-निर्माण में भाग नहीं लेते हैं, तो स्पष्ट है कि वे अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभाते। लेकिन हमारी मान्यता और उस कारण हमारी भूमिका भी भिन्न है।

मान लीजिये कि कल इलेक्शन में पंडित नेहरू हार गये। ऐसा खयाल तो हिंदुस्तान के लोगों के स्वप्न में भी नहीं होगा। फिर भी मान लीजिय कि हार गये, तो क्या पंडितजी का जीवन बेकार हो जायगा? अगर वह हार जायेंगे, तो जनता में सिंह के मुताबिक प्रवेश करेंगे। आज भी वे सिंह के मुआफिक ही प्रवेश करते हैं, लेकिन वह पिंजड़े के सिंह के मुताबिक प्रवेश करते हैं। अगर वे हारेंगे, तो खुला आ सिंह जनता में जा गा। वे जीते, तो भी उनकी जीत है; वे हारे, तो भी उनकी जीत है!

तिरुपुर, १८-१०-५६ —विनोबा

www.vinoba.in

तरह अप्रत्यक्ष चुनाव होंगे। ऊपर की संस्था के हाथ में फौजी शक्ति नहीं रहेगी, नैतिक शक्ति रहेगी। अगर उनके हाथ में भौतिक शक्ति रही, जैसी कि आज दुनिया के ४-५ लोगों के हाथ में दुनिया को आग लगाने की ताकत है, तो खतरा हमेशा के लिए बना रहेगा। इसलिए इसमें से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना होगा। कम्युनिस्ट भी राज्य के विलयन की बात करते हैं, लेकिन वे कहते हैं कि सत्ता अखीर में क्षीण होगी—State will wither away, लेकिन आज तो dictatorship of the Proletariat [सर्वहारा की तानाशाही] होगी और केन्द्र के हाथ में अधिक से अधिक सत्ता रहेगी। याने आखिरी उद्देश्य के बिल्कुल उल्टा काम आज करना होगा। इस तरह से कभी भी सत्ता क्षीण नहीं हो सकती है। सत्ता क्षीण करनी है, तो उसका आरंभ आज से ही करना होगा। अतः आज ऐसी जमात निर्माण होनी चाहिए, जो सर्वोदय के खयाल से ही सोचे, अपने विचार जनता के सामने रखे, जनता के साथ अच्छे काम में निरंतर सहयोग करे और अगर जनता, सरकार या कोई भी गलत काम कर रहा हो, तो उस पर अपना नैतिक असर डाल कर उन्हें रुकवायें। सारा समाज दूध के जैसा है। उसमें यह थोड़ा दही डाला जायेगा और फिर कुल दूध का दही बनेगा।

जब हम कहते हैं कि आज जिस ढंग से शासन आदि चलता है, वह उत्तम ढंग नहीं है, तो सामने वाले भी कहते हैं कि 'वह उत्तम ढंग नहीं है, लेकिन इससे बेहतर ढंग हमें सूझ नहीं रहा है, अभी हमारी जितनी अकल चलती है, उसके मुताबिक यही ठीक है।' पं० नेहरू ने भी अभी कहा कि direct election [प्रत्यक्ष चुनाव] ठीक नहीं हैं। यह विचार सबको पसंद आने में और उस पर अमल करने में कुछ देरी होगी, परंतु केवल चुनाव के 'प्रकार' पर ही हमारा आक्षेप नहीं है, मूलभूत नीति-विचार पर ही है। हम चाहते हैं कि सबका भला हो, न कि अधिक से अधिक लोगों का ही अधिक से अधिक भला!

आज के समाज में जिधर देखो, उधर भेद ही दिखायी देते हैं। प्रांत के मुख्य मंत्री-पद के लिए तक झगड़ा चलता है! इससे कितनी कुभावना फैलती है? होते हैं वे एक ही पार्टी के व्यक्ति; पर लोकशाही का नियम है न कि स्पर्धा होनी चाहिए और बहुसंख्या से निर्णय होना चाहिए! एक दफा सोलापुर में एक केस में न्यायाधीशों में से बहुसंख्यों ने कहा कि यह खून का केस है, इसलिए गुनहगारों को फाँसी देनी चाहिए। और फाँसी दे दी गयी! उन लोगों को कम से कम इतना क्यों नहीं सूझा कि जब कि न्यायाधीशों में से ही कुछ-कुछ लोग उस निर्णय के खिलाफ थे, तो उसका लाभ गुनहगार को मिलना ही चाहिए था! इसी प्रकार का एक केस अमेरिका में बना, जहाँ बहुसंख्या की राय से फाँसी दी गयी!! इस तरह उन्होंने majority [बहुसंख्या] को देवता माना है! हिन्दुस्तान में कुछ कम देवता नहीं हैं। फिर उसमें और एक देवता क्यों बढ़ाया जाय? यह सारा झगड़ा, एक तत्त्व का झगड़ा है। आखिर यह विचार दुनिया को कबूल करना पड़ेगा, क्योंकि यह एक सत्य-विचार है।*

* तमिलनाड़ रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन गांधीनगर, तिरुपुर में चुनाव-प्रस्ताव पर हुआ विनोबाजी का भाषण।—ता० १८-१०-'५६ सं०]

अप्रत्यक्ष चुनाव और प्रचार

प्रश्न:—"आपने Indirect elections (अप्रत्यक्ष चुनाव) की बात कही है। आगामी चुनाव में हम उस विचार को किस प्रकार लोकप्रिय बना सकते हैं?

विनोबा:—आगामी चुनाव में वह नहीं होगा, उसके बाद भी होगा या नहीं, हम नहीं कह सकते। हमारा भी एक politics [राजनीति] है, याने हम innocent [भोले] नहीं हैं। हमारी राजनीति आज तक की राजनीति को तोड़ने वाली है। इसलिए हमारा एक समाज बनाना पड़ेगा और हमारे विचारों की दृढ़ता अपने समाज में बनानी पड़ेगी। हमें यह दिखाना होगा कि दुनिया का कोई भी मसला हम अहिंसा से हल कर सकते हैं। उसके बाद ही हमारा यह राजनैतिक विचार सुनने के लिए लोग तैयार होंगे। तब तक हमारी गिनती मूर्खों में होगी, आज भी है। यह समझ लेना चाहिए और उस पदवी को हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। भूदान, अंबर चरखा, नयी तालीम जैसी कोई चीज देश में करके दिखानी चाहिए और तब तक आज के Politics की तरफ देखना ही नहीं चाहिए। अगर हम इन ४-५ सालों में वैसी कोई चीज करके दिखायेंगे, तो फिर हमारा असर राजनीति पर होगा। आज जो थोड़ा-सा असर दीख रहा है, उसका कारण है कि हमारा काम थोड़ा-सा चल रहा है। याने परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हुई है। आप देख रहे हैं कि दिन-ब-दिन खादी-बोर्ड के लिए अनुकूलता निर्माण हो रही है, जमीन के बँटवारे के बारे में कुछ न कुछ सोचा जा रहा है, राजनीतिज्ञ भी अप्रत्यक्ष चुनाव के बारे में बोल रहे हैं। अगर हमारा काम वेग से चला, तो वह परिवर्तन की प्रक्रिया भी वेग से चलेगी। लेकिन आज हम अपनी शक्ति दूसरे-तीसरे कामों में खोते हैं, एकाग्र नहीं होते हैं। हमारा विश्वास है कि भूदान आदि कामों के जरिये हम जो क्रान्ति लाना चाहते हैं, उसका थोड़ा भी जोर चलेगा, तो हिंदुस्तान की राजनीति पर हम असर डाल सकते हैं।

(गांधीनगर, तिरुपुर, १८-१०-५६)

इलेक्शन: लड़ाई नहीं, खेल!

(विनोबा)

इन दिनों बहुत लोगों को हर बात में "फाइट" करने की आदत पड़ गयी है। अगले साल, १९५७ में चुनाव की "फाइट" होगी! हमने कई बार कहा कि चुनाव लड़ते क्यों हो, वह तो खेलना चाहिए, जैसे कुश्ती खेलते हैं! पर उसमें दो मनुष्यों के बिना कुश्ती होती नहीं। इसलिए काँग्रेसवालों के लिए मल्ल ही नहीं दीखता है! "अपोजिट" पार्टी के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, ऐसा सिद्धांत हमने बनाया! अतः अगर अपोजिशन पार्टी हम चाहते हैं, तो चुनाव खेलना चाहिए, वह लड़ना नहीं चाहिए। परिणामतः चुनाव में जो बुराइयाँ होती हैं, वे तो नहीं होंगी! जिसने चुनाव जीत लिया, उसको राज्य-कारोबार चलाने का ईनाम मिल गया और जो चुनाव में हार गया, उसको सार्वजनिक सेवा का नारियल मिल गया, जैसे कुश्ती में हारने वाले को भी नारियल मिलता है! दोनों को दोनों बाजू से लाभ है। जो जीतेगा, वह राज्य-कारोबार चलायेगा, जो हारेगा, वह सीधी लोकसेवा करेगा।

जो सच्चा सेवक है, उसकी दोनों बाजू जीत होती है। अतः इलेक्शन में हमको खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। जैसे, दोनों भाई हैं, एक ही आश्रम में या एक ही घर में प्रेम से मिल-जुल कर काम करते हैं, एकत्र खाते-पीते हैं और अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। एक अगर सोशलिस्ट पार्टी का है, तो दूसरा काँग्रेस-पार्टी का; फिर भी एक-दूसरे पर दोनों अत्यंत प्रेम करते हैं। इलेक्शन में जब दोनों जायेंगे, तो एक कहेगा, "इसको वोट मत दीजिये, क्योंकि वह अच्छा कारोबार नहीं चलायेगा, उसकी कल्पना अच्छी नहीं है," आदि। दूसरा भी इस तरह लोगों को कहेगा: "वह अच्छी लोकशाही नहीं चलायेगा, क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है," आदि। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध लोगों में विरुद्ध विचार-प्रचार करेंगे। कोई भी हारेगा और कोई भी जीतेगा, लेकिन घर पर आकर दोनों एकत्र खायेंगे, पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह के आनंद में और विनोद में इलेक्शन होना चाहिए। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में बाप हिन्दू होता था, तो उसका एक बेटा बौद्ध होता था, एक जैन; पर एक ही परिवार में प्रेम से वे रहते थे और अपने धर्म का विश्वास अलग-अलग रूप से रखते थे। आज भी कहीं-कहीं एक ही घर में कोई काँग्रेसी, तो कोई समाजवादी, तो कोई साम्यवादी होता ही है। तो, जैसे धर्म-विश्वास अलग है, इसलिए प्रेम तोड़ना चाहिए, ऐसी कोई जरूरत नहीं है, वैसे ही पोलिटिकल थियेरी अलग हो गयी, तो प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं। इसीलिए इलेक्शन में लड़ने की वृत्ति—"टू फाइट इलेक्शन"—यह सब शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से आया है। तो, अपने देश में इलेक्शन खेल ही होना चाहिए।

आपने प्रस्ताव पास किया कि हम इलेक्शन में भाग नहीं लेंगे। इसलिए आपको यह लागू नहीं होता है, पर चुनाव में जो हिस्सा लेते हैं, उनको यह समझाइये। उतनी ही आपकी जिम्मेवारी रहेगी। दोनों में से किसीकी सूरत रोनी या गुस्सेवाली नहीं होनी चाहिए। इतना अगर हमने कर लिया तो हमने बहुत काम कर लिया। मशीन में 'फ्रिक्शन' (घिसावट) होती ही है। अगर बिना फ्रिक्शन की मशीन बनायी, तो वह काम ही नहीं देगी, स्पीड् नहीं आयेगी। हँसते-खेलते इलेक्शन करोगे, तो भी उसमें कुछ न कुछ फ्रिक्शन होगी ही। उस समय हम एक तेल की डिब्बी तैयार रखें और जहाँ फ्रिक्शन मालूम हो, वहाँ तेल डालें! यह कला अगर हमको सध गयी, तो ये लोग शिकायत नहीं करेंगे कि हम लोग इलेक्शन से अलग हैं! बल्कि वे यही कहेंगे कि ऐसे थोड़े लोग अलग रहते हैं, तो अच्छा ही है! नहीं तो फ्रिक्शन में तेल कौन डालने बैठा है? अतः इतना काम आप कर सकते हैं।

(ग्रामोदय-खादी-संमेलन, तिरुपुर, १८-१०-५६)

www.vinoba.in

शिक्षकों से

(रविशंकर महाराज)

किसी भी कार्य की श्रेष्ठता तीन बातों पर निर्भर करती है : क्रिया, ज्ञान और भक्ति। ये तीन बातें हों, तो काम सुन्दर ढंग से चलता है। वेदों में भी कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासना-काण्ड हैं। उनमें भी इन तीन बातों की कल्पना की गयी है। प्राचीन काल में इस विषय को लेकर अनेक वाद-विवाद चले हैं। उन दिनों कुछ ऋषि ऐसे निकले, जिन्होंने ज्ञान को प्रधानता दी। उन्होंने कहा कि ज्ञान ही श्रेष्ठ है, अतएव केवल ज्ञान प्राप्त करो। इन ऋषियों ने उपनिषदों की रचना करके अपना मत प्रदर्शित किया। दूसरे कुछ ऋषि ऐसे निकले, जिन्होंने कहा कि क्रिया करो, क्रिया के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अपने मत के समर्थन में उन्होंने ब्राह्मण-गाथाएँ लिखीं। बाद में कुछ ऋषि ऐसे हुए, जिन्होंने भक्ति को महत्त्व दिया। उन्होंने बताया कि ज्ञान के बिना काम नहीं होता, लेकिन साथ में भक्ति होगी, तो भगवान् दौड़ता हुआ आयेगा। इस विचारवाले ऋषियों ने भक्ति का आग्रह रखा और भक्ति-विषयक ग्रंथ लिखे। अन्त में व्यास हुए। उन्होंने कहा कि किसी भी काम को श्रेष्ठतापूर्वक करना हो, तो अकेले ज्ञान, अकेले कर्म और अकेली भक्ति से कुछ न होगा। उसके लिए तीनों की आवश्यकता है।

भक्त शिक्षक

शिक्षक की मिट्टी ही अलग ढंग की होती है। असल में बात यह है कि कोई शिक्षक 'बन' ही नहीं सकता। शिक्षक तो स्वभाव से हो जाता है। स्वभाव से अर्थात् ज्ञान और क्रिया से नहीं, किन्तु भक्ति से। जब शिक्षक में भक्ति का संचार होता है, तो वह कितने और कैसे-कैसे काम कर जाता है, इसका स्वयं उसे भी पता नहीं चलता। भक्ति में से क्रिया का, काम करने की वृत्ति का जन्म होता है। इसलिए भक्ति महत्त्व की वस्तु है। इसका यह मतलब नहीं कि क्रिया और ज्ञान व्यर्थ हैं। तीनों का अपना महत्त्व है। अन्तर केवल इतना ही है कि क्रिया और ज्ञान बाहर से आ सकते हैं, जब कि भक्ति कहीं बाहर से आ नहीं सकती। भक्ति के लिए आत्म-जागृति जरूरी है। जीवन में भक्ति का अंश तो तभी आता है, जब आदमी खुद होशियारी पकड़ता है। जिन दिनों हमारे समाज में धर्म-भावना थी, उन दिनों भक्ति थी। आज धर्म की जगह कानून ने ले ली, इसलिए भक्ति का लोप हो गया। कभी-कभी कानून किस तरह भक्ति के काम में बाधा डालता है, उसका एक उदाहरण नीचे देता हूँ :

सच्चा अधिकारी : जनता

एक पाठशाला में एक शिक्षक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को भूगोल सिखा रहे थे। इतने में अचानक शिक्षाधिकारी वहाँ पहुँच गये। शिक्षक सिखाने में तल्लीन था, इसलिए वह यह न देख पाया कि पीछे शिक्षाधिकारी आकर खड़े हैं। समय पूरा हो जाने पर भी शिक्षक भूगोल सिखाता रहा। आखिर शिक्षाधिकारी ने कक्षा में प्रवेश किया और शिक्षक से समय-पत्रक माँगा। शिक्षक ने निश्चित समय से अधिक समय भूगोल सिखाने में दिया था, इसलिए नियमभंग के आरोप के साथ निरीक्षण-पुस्तक में लिखा गया—"शिक्षक नियमित और व्यवस्थित नहीं है।"

पर जिस तरह नाटक में कोई अधिकारी होता है, उसी तरह शिक्षा-विभाग में भी शिक्षकों के काम पर निगरानी रखने के लिए कोई-न-कोई अधिकारी होता ही है। शिक्षकों को उसके साथ विवेकयुक्त व्यवहार करना चाहिए, किन्तु उन्हें यह कभी न भूलना चाहिए कि उनका सच्चा अधिकारी तो लोक-समाज है—जनता है। उन्हें अपने अधिकारी को खुश करने के लिए नहीं, बल्कि जनता को खुश करने के लिए अपना काम करना है। इस काम को भली भाँति करने की मुख्य चाभी भक्ति है। शिक्षक अपना काम भक्तिपूर्वक करेगा, तो जनता उस पर प्रसन्न होकर उसका खूब सम्मान करेगी, इसमें सन्देह नहीं। इस तरह काम करने वाले को अपने बड़े अधिकारी का कोई डर नहीं रहता।

'मेरे तो गिरधर गोपाल'

पुराने समय में स्त्रियाँ किसी स्त्री को ताना मारते हुए कहती थीं कि इसे तो 'पांडे की माँ' के जैसा मद हो गया है, क्योंकि पांडे के बहुत-से लड़के होते थे, बशर्ते कि उसने उनको अपना माना हो। पुराने जमाने में शिक्षक विद्यार्थियों को अपने बालकों से भी अधिक प्यार करता था। आज इसकी बड़ी कमी है। इस कमी की पूर्ति भक्ति द्वारा हो सकती है। भक्ति से प्रेम उत्पन्न होता है। भक्ति ही ज्ञान और क्रिया की जननी है। जिस शिक्षक में भक्ति प्रकट होती है, उसमें हर कहीं से ज्ञान एकत्र करने की भूख जागती है। ऐसा शिक्षक अपने विद्यार्थियों को इतना कुछ सिखा देता है कि प्रायः उसे भी उस पर आश्चर्य होता है। जिस तरह बछड़े को छोड़ते ही गाय पन्हियाती है, उसी तरह विद्यार्थियों को देख कर शिक्षक के हृदय से ज्ञान का दूध झरना चाहिए।

एक साधारण माता भी अपने बालक को बहुत कुछ सिखा देती है, क्योंकि माता में भक्ति है। भक्ति ही उससे बालक के लिए सब कुछ करा लेती है। इसी तरह शिक्षक के लिए तो विद्यार्थी ही उसका सर्वस्व बन जाना चाहिए। विद्यार्थियों के बिना उसे चैन न पड़ना चाहिए। विद्यार्थियों को देखते ही उसका हृदय प्रेम से छलकना चाहिए। ऐसी भक्ति होगी, तो कुछ घंटों की पढ़ाई भी काफी हो जायगी।

उनके पथ पर चलें

एक शिक्षक थे। हुक्का पीने की आदत थी। सबेरे उठने पर चूल्हे के सामने बैठते और हुक्का गुड़गुड़ा लेते, लेकिन अपने विद्यार्थियों के देखते कभी हुक्का न पीते। पाठशाला के लिए घर से चलते, तो नीची निगाह रख कर चलते। एक दिन उन्होंने मुझे पीटा था। एकादशी का दिन था। भले शिक्षक मुझे पीट कर खूब पछताये। वे क्या पढ़ाते थे और किस तरह पढ़ाते थे, सो तो मुझे आज याद नहीं पड़ता है, किन्तु आज भी उनके स्मरण से मेरे मन में भक्ति प्रकट होती है। वे विद्यार्थी को देख कर खुश होते थे और विद्यार्थी उन्हें देख कर खिल उठते थे।

कानून के जाये !

योजना-क्षेत्र में घूमते समय मुझे एक योजनाधिकारी मिले। वे कोट-पतलून पहने और नेकटाई लगाये हुए थे। उन्होंने मुझसे कहा—"हमें अपनी पाठशालाओं में चरखे शुरू करने हैं।" मैंने पूछा—"चरखे चलाना सिखायेगा कौन ?" उन्होंने जवाब दिया—"मैं सिखाऊँगा, मैं जानता हूँ।" सुन कर मैं मन-ही-मन खूब हँसा। कोट-पतलून और नेकटाई धारण करने वाले ये अधिकारी बालकों को कातना सिखाने में कितने ही निपुण क्यों न हों, जब तक कातना उनके जीवन का सहज अंग न बन जाये, तब तक वे विद्यार्थियों में कातने की अभिरुचि पैदा कर ही नहीं सकते।

आज पाठशालाओं में कानूनी ढंग से सूत कतता है। यह कानून-सम्मत पढ़ाई, कानून-सम्मत शिक्षक और कानून-सम्मत उद्योग हमारा सर्वनाश करके रहेंगे।

ज्ञान की गंगोत्री

आज भी पाठशाला में वे ही की वे ही पुस्तकें पढ़ायी जाती हैं, वे ही पुराने गीत फिर-फिर से सिखाये जाते हैं। यह सब जूठा ज्ञान है। यदि बालकों को देश के सच्चे नागरिक बनाना है, तो ज्ञान की इस जूठन से काम नहीं चलेगा। आज तो रोज सबेरा होता है और रोज युग बदलता है। इस बदलते युग और बदलती परिस्थिति के अनुसार आपको नित-नया ज्ञान प्राप्त करना होगा और उसे अपने बालकों को परोसना होगा। यह सब तभी होगा, जब बात दिल से उगेगी, सूझ-समझ से काम लिया जायगा। यदि आपके हृदय में बालकों के लिए प्रेम का अटूट झरना बहता होगा, तो ज्ञान आपको मिल कर रहेगा। प्रत्येक शिक्षक में ज्ञान तो ढेरों-ढेर पड़ा है। मात्र उसे प्रेम की गरमी पहुँचाना जरूरी है। बछड़े को देखते ही जैसे गाय पन्हियाती है, उसी तरह बालकों को देखते ही शिक्षक का हृदय प्रेम से उमड़ने लगे, तो उसके मुँह से ज्ञान की बातें तो ऐसे निकलेंगी कि उसे पता ही न चलेगा।

भाइयो, बालकों को क्रियाशील, ज्ञानवान् और भक्तिवान् बनाना आपका काम है। आप इस ओर ध्यान दीजिये। आप बालकों को अपना सर्वस्व समझिये। यदि आपको अपना कल्याण सिद्ध करना है, तो अपने धंधे को धर्म-भाव से स्वीकार कीजिये। आपका धंधा पवित्र है। इस पवित्र धर्म का पालन करते-करते आप भी पवित्र बनेंगे।

("भूमिपुत्र" से; अनु०—काशिनाथ त्रिवेदी)

निद्रा समाधि है !

सोने में अनियमितता का अर्थ है, समाधि का अनादर। निद्रा कर्मयोगी की सहजप्राप्त समाधि है। समाधि में विचारों का जितना विकास होता है, उतना वह जाग्रत-चिंतन में भी नहीं होता है। मुझे इसका अच्छा भान है, इसलिए जब मैं सोता हूँ, तब हम शेषशायी भगवान् हैं, ऐसी अनुभूति मुझे होती है। निःस्वप्न प्रगाढ़ निद्रा में जीवात्मा अपने मूल स्वरूप में लीन होता है। वहाँ उसको शक्ति प्राप्त होती रहती है। इस लिए सत्यशोधक को निद्रा के बारे में आग्रह रखना चाहिए। —विनोबा

---

www.vinoba.in

"फेलोशिप ऑफ रिकन्सीलिएशन" के सदस्यों के साथ

विनोबा की चर्चा

विनोबा : दूसरे धर्मवालों के साथ आपके संबंध कैसे हैं ?

सदस्य : ईसाइयों में कुछ लोग पद चाहते हैं, इसलिए संघर्ष पैदा होता है।

विनोबा : यह झगड़ा तो हिंदुओं के बीच भी चलता है और राजकीय पक्षों में भी। सारी राजनीति आज स्पर्धा पर खड़ी है। इसके लिए चुनाव-पद्धति जिम्मेवार है। फिर भी यह सारा झगड़ा सेक्युलर है, धर्मवालों के साथ उसका संबंध नहीं है!

सदस्य : प्रभु ईसा के बताये प्रेममार्ग के अनुसार 'रिकन्सीलिएशन' (एकवाक्यता करना, समझौता करना) ही हमारा मकसद है।

विनोबा : ईसा की राह ईसाइयों के लिए ही नहीं, दुनिया के लिए है। बाबा का दावा है कि वह ईसा की राह पर ही चल रहा है। सच्ची राह, फिर वह ईसा की बतायी हुई हो या मुहम्मद की या ऋषियों की, एक ही है। कुरान में कहा है, "दुनिया में सिर्फ मुहम्मद ही रसूल नहीं है, दूसरे भी रसूल हैं और हम किसीमें फर्क नहीं करते।" हिंदुओं का भी यही विश्वास है कि दुनिया के सत्पुरुषों द्वारा बतायी हुई राह एक ही है। भेद संकुचित वृत्ति के कारण पैदा होते हैं। हिंदू होकर भी मैं ईसा पर श्रद्धा और गिरि-प्रवचनों पर विश्वास करता हूँ। दुनिया को सत्पुरुषों ने एक ही धर्म की राह बतायी है। भेद परिस्थिति के कारण दीखते हैं, जैसे पूरब की तरफ मुँह करना चाहिए या पश्चिम की तरफ? हिंदू सूर्य की पूजा करते हैं, इसलिए सुबह पूरब की ओर मुँह करेंगे, शाम को पश्चिम की तरफ। मुसलमान काबा को ही सामने रखना चाहते हैं। तो इसमें क्या फर्क हुआ? सत्य, प्रेम, करुणा, दया आदि परमेश्वर के गुणों में कहाँ अंतर आया? चाहे घुटने टेक कर पूजा करो या पद्मासन लगा कर, कोई फरक नहीं पड़ता। हम कभी खड़े रह कर प्रार्थना करते थे, तो कभी चलते-चलते। कभी कातते-कातते, तो कभी बैठे-बैठे, अतः ये सब धर्म के भेद नहीं, रिवाजों के भेद हैं। कोई ईसा को मानता है, मुहम्मद को, राह एक ही है। क्यों? आपको यह बात जँचती है या नहीं?

सदस्य : जी हाँ।

दूसरा सदस्य : सत्य, प्रेम, करुणा आदि आपने परमेश्वरी गुण बताये हैं। ऐसे सगुण परमेश्वर का अद्वैत के साथ कैसे मेल होगा और अद्वैत तो हिंदुओं का प्रमुख विचार है।

विनोबा : परमेश्वर के गुण और स्वरूप का विश्लेषण अनेक तत्त्वज्ञों ने किया। वह इतना व्यापक है कि एक मनुष्य को एक ही बाजू का दर्शन होता है, इसलिए भिन्न-भिन्न पंथ हो गये और इसलिए कोई द्वैत मानने लगा, कोई अद्वैत। हिंदू धर्म का इन पंथों के साथ कोई संबंध नहीं। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत माननेवाले सारे हिंदू हैं, निर्गुण पूजक भी हिंदू ही हैं। हिंदू धर्म इन सबको पचा जाता है। जहाँ प्रार्थना के लिए परमेश्वर के सामने खड़े हुए कि वह सत्य, प्रेम, करुणादि गुणों से युक्त है, ऐसा कहना अद्वैत से विरोधी नहीं है। लेकिन जहाँ विचार का ताल्लुक है, वहाँ वह परमेश्वर से अपने को अलग नहीं मानेगा।

शंकराचार्य ने कहा, "हे प्रभु, यह सारा अभेद है, फिर भी तू मेरा स्वामी है, मैं तेरा स्वामी नहीं हूँ।' फिर मिसाल दी, 'समुद्र की तरंगें होती हैं, तरंगों का समुद्र नहीं। वे आती हैं और जाती हैं। समुद्र कायम रहता है, तू समुद्र-स्वरूप ही है।'

शंकर रामानुज को समझाता है, रामानुज शंकर को। अपने-अपने अनुभवों के कारण विचार-भेद रहेंगे ही। कोई ईश्वर में अभिन्नता अनुभव करता है, तो कोई कुछ अंतर अनुभव करता है। इसे क्या कहेंगे? इस्लाम कहता है कि परमेश्वर स्वामी है और हम भक्त हैं। लेकिन सूफियों ने कहा : 'अनल हक़'—'मैं ही वह हूँ।' परिणामतः मंसूर पर मुसलमानों ने पत्थर बरसाये। 'अनल हक़' बोलते और पत्थर खाते-खाते मरा। तो, यह सब भिन्न-भिन्न अनुभव की बातें हैं। अनुभव के द्वार को खुला ही रखना चाहिए, बंद नहीं। 'यही सही और वह गलत है'; कहने के बजाय 'यह भी सही है और वह भी सही है', कहना ठीक होगा। मैं "भी" माननेवाला हूँ—जहाँ कि ईश्वरीय स्वरूप का ताल्लुक है! जहाँ अपने संबंध का ताल्लुक है, मैं "ही" मानता हूँ। जॉन के गॉस्पेल और मेथ्यु के गॉस्पेल में भेद ही नहीं है, ऐसा ईसाई भी नहीं कहते। फिर भी इनमें वे विरोध नहीं मानते। ऐसे ही अद्वैत और द्वैत में भी विरोध नहीं है। एक महान् अद्वैती ने कहा है, "दो द्वैतियों में विरोध हो सकता है, परंतु अद्वैती होने के नाते मेरा आपसे कोई विरोध नहीं हो सकता।" इसका नाम है अद्वैत। चाहे आप पश्चिम की तरफ मुँह करो या पूरब की तरफ; रविवार को प्रार्थना करो या शुक्रवार को। न करना चाहो, तो भी मत करो! इसलिए उसका नाम अद्वैत है। ऐसा अद्वैती आप भले ही बेकाम समझें, लेकिन उसका आपके साथ कोई झगड़ा नहीं होगा।

सदस्य : "नो क्वारल" (झगड़ा न करना) और 'बीइंग रिकंसाइल्ड' (समझौता करना) में फर्क है। अगर आप रिकन्साइल्ड हैं, तो आप एक हैं।

विनोबा : इसका उपाय हो सकता है। मुझे काशी जाना है, आपको काश्मीर। दोनों अपनी नियोजित जगहों पर चले जायेंगे। कोई झगड़ा नहीं होगा, आगे की बात अनुभव की है। एक काश्मीर के लिए दूसरे को खींचता है, दूसरा काशी के लिए। यह सब अनुभव का लेन-देन है। हायर स्फीअर, उच्चस्थिति में फर्क पड़ता है, प्रेम, भक्ति आदि में नहीं।

सदस्य : रिकन्साइलेशन का तरीका हम जानना चाहते हैं।

विनोबा : जहाँ तक नैतिकता का और जनसेवा, प्रेम, करुणा आदि का सवाल है, वहाँ सब एक हैं। हिंदू धर्म भी जहाँ एक ओर अद्वैत को अपने बीच समा लेता है, दूसरी ओर नास्तिक तक को ग्रहण कर लेता है।

सदस्य : यह तरीका हमारे उपयोग का तो है, लेकिन जो अनेक समस्याएँ सामने आती हैं, वहाँ हम क्या करें?

विनोबा : वहाँ रिकन्सीलिएशन का कोई सवाल ही नहीं। यह बात तो हिंदू, ईसाई, मुसलमान, आस्तिक, नास्तिक, द्वैत, अद्वैत आदि तात्त्विक प्रश्नों के बारे में है। लेकिन जहाँ कोई झाड़ू लगाना चाहता है, या कोई ग्रामोद्योग खड़े करना चाहता है, तो वह सेवा ही है। वहाँ कोई भेद नहीं हो सकता।

सदस्य : देहातों में अलग-अलग सामाजिक भूमिकाएँ हैं। हरिजन, गैर-हरिजन, जात, गैरजात आदि। इनको कैसे रिकन्साइल्ड करें?

विनोबा : वहाँ रिकन्साइल्ड करना नहीं है, भेद ही तोड़ना है। अच्छा और बुरा कभी रिकन्साइल्ड नहीं हो सकता। जहाँ दो भिन्न प्रकार की अच्छाइयाँ होती हैं, वहीं रिकन्साइल्ड हो सकता है। ब्राह्मण और हरिजन, दोनों की भलाई का हमारा लक्ष्य है, लेकिन दोनों के बीच हम भेद नहीं मानेंगे, यहाँ समझौता नहीं हो सकता।

सदस्य : तो हम भिन्न-भिन्न जमातों की सेवा कैसे कर सकते हैं?

विनोबा : यह बापू ने बता दिया है। हमें मनुष्य का विरोध नहीं करना है, उसके गलत कामों का विरोध करना है। कोई बहुत बुरा हो, तो भी उस पर प्यार ही करना है। हम भी भीतर से बुरे होते ही हैं।

यह 'रिकन्सीलिएशन' शब्द ही मिसनोमर (गलत) है। वह गलतफहमी करनेवाला शब्द है। आपका मूल सवाल है, जहाँ परस्पर के स्वार्थों का संघर्ष होता है, वहाँ कैसे काम करें? वहाँ कैसे सर्वोदय लायें? इसका उत्तर है—प्रेम; विरोधियों पर भी प्रेम करना।

सदस्य : यह व्यवहार में कठिन लगता है।

विनोबा : घने अंधेरे में ही दीपक चमकता है। द्वेष के क्षेत्र में ही प्रेम अधिक काम आता है। एक जापानी भाई ने पूछा था, 'अंग्रेजों के सामने गांधीजी की अहिंसा चली, पर हिटलर के सामने नहीं चल सकती थी।' हमने कहा, 'वहाँ ज्यादा चलती, क्योंकि वहाँ घना अधकार था।'

सदस्य : हरएक में कुछ-न-कुछ भलाई है, तो सबको 'इविल'-दुष्ट कैसे कहें?

विनोबा : यह 'फिलॉसफीकल पोजिशन' है। मैं कंपॅरेटिव (तुलनात्मक) बात कर रहा हूँ कि एक मनुष्य में जितने गुण होते हैं या जितने दोष होते हैं, उतने दूसरे में नहीं। अहिंसा को तो अधिक द्वेषी, अधिक पापी और अधिक जुल्म करनेवाले के सामने काम करने का अधिक ही आनन्द आयेगा। अंग्रेजों के मुकाबले जहाँ गांधीजी को २५ साल लगे, वहाँ हिटलर के मुकाबले में पाँच ही साल लगते; क्योंकि अंग्रेजों में कुछ भलाई थी और हममें भी वह थी, इसलिए ज्यादा समय लगा। लेकिन सामने ऐसा दुश्मन हो कि जिसमें ज्यादा ही दोष हों और गुण कम हों, तो हम उसे बहुत जल्द जीत लेंगे!

(पेरिनायकमूपालयम्, कोइंबतूर, २१-९-'५६)

---

www.vinoba.in

कुछ अधिक सर्वोदय !

(राल्फ रिचर्ड कैथान)

जब राष्ट्रीय महासभा ने अपना ध्येय "समाजवादी समाज-रचना" कायम किया, तब कई लोगों ने यह सवाल पूछा था कि उसका ध्येय सर्वोदय क्यों न रखा जाय ? पर कभी-कभी मैं विचार करने लगता हूँ कि सर्वोदयी कार्यकर्ता स्वयं भी यह क्यों न मान लें कि उनमें भी अभी कई खामियाँ हैं !

मैं अभी-अभी एक सर्वोदय-केंद्र पर से आ रहा हूँ। वहाँ के कार्यकर्ताओं के सामने बड़े ऊँचे ध्येय रहे हैं। वे अच्छी तरह प्रशिक्षित हैं। उन्हें काफी अनुभव भी हासिल है, पर जैसा कि कई गांधीवादी केंद्रों में अक्सर पाया जाता है, यहाँ के पाखानों की बुरी हालत थी। मैले का खाद बनाने की वहाँ के लोगों को चिंता है, ऐसे कोई लक्षण मुझे वहाँ नहीं दिखाई दिये। गढ्ढा करीब-करीब पूरा भर चुका था। जहाँ टट्टियाँ उठा कर रखी जा सकें, ऐसा कोई दूसरा गढ्ढा खुदा हुआ नज़र नहीं आ रहा था। संक्षेप में, मैले का खाद बनाने की कोई योजना ही नहीं थी।

इधर हिन्दुस्तान के खेत खाद के लिए तरस रहे हैं। उन्हें भुखमरी सहन करनी पड़ती है और उसीके परिणामस्वरूप मनुष्य को भी भरपेट खुराक नहीं मिलती।

हम लोग पहले जहाँ रहते थे, वहाँ हमने यह नियम ही बना लिया था कि टट्टियों के लिए तीन लंबे गढ्ढे हमेशा तैयार रहें। जब तक तीसरा गढ्ढा भर जाता, तब तक पहले गढ्ढे में के मैले का खाद बन कर तैयार हो जाता था। उसमें का खाद खोद कर खाद की जरूरतवाले खेतों में डाल दिया जाता था। इस प्रकार क्रमशः तीनों गढ्ढे खाली कर दिये जाते थे। परिणाम यह हुआ कि करीब हमारे घर के आस-पास की दो एकड़ जमीन कुछ ही सालों में अच्छी खादवाली जमीन बन गयी। पिछले वर्ष उसके सबसे रद्दी हिस्से में मैंने मूँगफली लगायी थी। इनका उपयोग कोडाईकनाल आश्रम में किया गया। वहाँ के लोगों ने उनकी बहुत तारीफ की। वैसे तो मैंने अच्छी फसल प्राप्त करने के इरादे से मूँगफली लगायी ही नहीं थी, मेरा इरादा तो सिर्फ जमीन में अधिक नाइट्रोजन पड़े, यही था। पर मेरे दोनों हाथों लड्डू रहे !

मैं जब उस केन्द्र पर रहता था, तब मैंने अपना यह कर्तव्य-सा मान लिया था कि रोज सवेरे या शाम मैं खुद टट्टी की सफाई करूँ। इसमें मुझे खूब आनंद भी आता था। कई बार मैं आस-पास के ढोरों के चरने के मैदान में से गोबर उठा कर लाता और गढ्ढे में डाल देता, ताकि मैले की पूर्ति हो सके। खाद के योग्य हरी फसलें भी मैंने लगा रखी थी। उनकी पत्तियाँ या डालें काट-काट कर मैं इन मैले के गढ्ढों पर करीब-करीब रोज़ ही पाट देता था। इस पर पास के तालाब से लायी हुई मिट्टी पतली-सी फैला देता। इस प्रकार गढ्ढा काफी जल्दी भर जाता था। टट्टी के पास कोई विशेष दुर्गंधि नहीं आती थी।

कोडाईकनाल-केन्द्र में हम लोगों ने फ्लॅश पद्धति के पाखाने बनवाये हैं, पर पानी और मैला जाने के लिए उनके पीछे दो बड़े गढ्ढे बनवाये हैं। एक साल सारा मैला और पानी एक गढ्ढे में जाने देते हैं और दूसरे साल दूसरे में। आस-पास का सारा कूड़ा-करकट भी इसी गढ्ढे में लाकर डाल देते हैं। दो माह पहले मैं गत साल के गढ्ढे में उतरा और उसमें का खाद निकालने लगा। पहले हमने माली को यह काम करने के लिए कहा था, तो गढ्ढे में उतरने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। मैं जब खोद कर खाद बाहर फेंकने लगा, तो उसे आश्चर्य हुआ कि सारे मैले का खाद में कैसे रूपांतर हो गया। उसके बाद वह स्वयम् नीचे उतरा और पूरा गढ्ढा उसने खाली कर दिया। मुझे यकीन हो गया है कि इस आश्रम के बगीचे को खाद की कमी कभी महसूस न होगी। गांधीजी हमेशा सफाई पर जोर देते रहे हैं। आज जब भूदान का युग शुरू हुआ है, तब कई लोग यह मान्यता रखने लग गये हैं कि हम जमीन के विश्वस्त हैं और हमें अच्छे विश्वस्त बनना सीखना चाहिए। पर हममें से ही बहुत से लोग अभी उस हद तक भी नहीं पहुँचे हैं !

निसर्गोपचार

सर्वोदय के एक पहलू के बारे में हमेशा कठिनाई महसूस होती है और वह है, आत्मसंयम। कम-से-कम दक्षिण हिन्दुस्तान के बारे में तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि निसर्गोपचार के बारे में हम लोग बहुत ही पिछड़े हुए हैं। संतुलित आहार से इसकी शुरूआत होती है। पुराने अनुभवी कार्यकर्ताओं के घरों में भी जब मैं रागी की कांजी नहीं देखता, तब मुझे आश्चर्य मालूम होता है। वास्तव में रागी (मडुआ) हिन्दुस्तान के एकदलीय अनाजों में सबसे अधिक पौष्टिक है। उसे कई बार "अकाल की खुराक" या "गरीबों की खुराक" कहा जाता है। खुराक के तज्ञ लोग हमेशा सिफारिश करते हैं कि कुछ कच्ची खुराक अवश्य खानी चाहिए, पर मैं शायद ही किसीको ऐसी खुराक खाते देखता हूँ। "सर्वोदयी" रसोड़ों में भी मुझे कई बार मिल का कुटा चावल खाना पड़ता है ! इसके लिए कुछ कारण अवश्य दिया जाता है, पर वास्तव में वह निरा बहाना ही होता है। कुछ-न-कुछ कारण बताने की हमें बुरी आदत-सी लग गयी है। हम अपने खुद के कामों की जिम्मेवारी उठाने के लिए तैयार नहीं हैं। हम कुछ-न-कुछ कारण, कोई-न-कोई बहाना ढूँढ़ ही निकालते हैं, फिर वह वास्तव में उचित न भी हो। पर अब समय आ गया है कि पौष्टिक खुराक के सवाल पर हम पूरी गम्भीरता से विचार करने लग जायँ। कच्चा अंकुरित चना सूखे चने से १० गुना 'क' जीवनसत्व धारण करने वाला होता है। केवल एक रात पानी में फुलाने से अनाज की संरक्षण खुराक की कीमत दुगुनी हो जाती है। ये दोनों कीमतें हमारे लिए बहुत महत्त्व की हैं। फिर हम उन्हें क्यों नहीं हासिल करते ? हम अपने यहाँ के गरीबों को क्यों नहीं खुराक के ये गुणधर्म बताते ? पुराने जमाने में ये आम तौर से प्रचलित ही थे। ये बातें हैं तो छोटी-छोटी, पर वे बड़ा महत्त्व रखती हैं।

वस्तुतः निसर्गोपचार की संभावनाओं को समझने के लिए हम कोई खास कोशिश ही नहीं करते, फिर "सर्वोदयी कार्यकर्ता" कहलाने का दम क्यों हम भरते हैं ? सर्वोदय का मतलब है, मनुष्य का सर्वांगीण कल्याण। मनुष्य का स्वास्थ्य निश्चय ही सर्वोपरि है और सर्वोदय के जनक ने पुराने अनुभवों की सत्यता की जाँच-पड़ताल करने के लिए काफी विचार किया था और समय भी बरबाद किया था।

('ग्रामोद्योग पत्रिका' से)

सर्वोदय-विचार-शिविर : सौराष्ट्र

(वसंतभाई व्यास)

सौराष्ट्र भूदान-यज्ञ-समिति की प्रार्थना को स्वीकार करके श्री दादा धर्माधिकारीजी और श्री विमला बहन ने ता० १ अक्टूबर से ७ अक्टूबर का सप्ताह सौराष्ट्र में दिया। तीन दिन का शिविर राजकोट में और ४ दिन का लोकभारती, सणोसरा में रहा। राजकोट के शिविर में ७० और सणोसरा को शिविर में १४० कार्यकर्ता आये थे।

भूदान-आरोहण के अहिंसक पथ पर आगे बढ़ने के लिए विचार की स्पष्टता, आध्यात्मिकता का बल और प्रेरणा की बहुत जरूरत है। समय-समय पर इसकी व्यवस्था हरेक प्रांत के लिए आवश्यक है, क्योंकि यद्यपि प्राप्ति, वितरण, सामूहिक पदयात्राओं आदि से कार्य-पद्धति विकसित करने की शक्ति मिलती है; कई पावन प्रसंगों से थोड़ा बल भी मिलता है; परंतु इतना ही काफी नहीं है। सर्वोदय विचार एक ऐतिहासिक आवश्यकता है और आज भूदान-यज्ञ उसका माध्यम है। इसका एक-एक पहलू कार्यकर्ताओं के दिमाग में स्पष्ट रहे, वह बिलकुल जरूरी है।

विश्वशांति का असरकारक साधन बनने का नम्र प्रयत्न आज भूदान-यज्ञ कर रहा है, इसलिए वह लोकनीति प्रस्थापित करने की, निशस्त्रीकरण की ओर बढ़ने की और दूसरे बड़े प्रश्नों को अहिंसा के जरिये हल करने की दिशा में सोचने लग गया है। श्री दादा सर्वोदय-विचार के भाष्यकार हैं। वे रूई तुनने वाले की भाँति सारे विचारों को स्पष्ट और सरल रूप में रख देते हैं। सर्वोदय-विज्ञान आज के आर्थिक, राजनैतिक प्रचारों में क्या तबदीली करना चाहता है, तंत्रमुक्ति, शासनमुक्ति और कांचनमुक्ति की ओर समाज को कैसे बढ़ाया जा सकेगा, आदि बातों का तल-स्पर्शी निरूपण दादा करते हैं और उससे कार्यकर्ताओं की विचार-निष्ठा बढ़ती है। स्वयंस्फूर्ति से काम करने की प्रेरणा लेकर वे जाते हैं। सौराष्ट्र को भी इस शिविर से ऐसा ही अनुभव हुआ।

श्री नानाभाई और श्री मनुभाई वर्षों से नयी तालीम का स्वतंत्र प्रयोग कर रहे हैं। प्राथमिक शिक्षण से लेकर आज वे ग्राम-विद्यापीठ तक पहुँचे हैं, लोकभारती उसका प्रत्यक्ष रूप है। वे दोनों सर्वोदय के अच्छे विचारक हैं। दादा और विमलाबहन की संगति से उनको बहुत प्रसन्नता हुई और विचार-शिविर के समारोप-समारोह पर संस्था की तरफ से गुरु-दक्षिणा के रूप में सर्वोदय-विचार की ओर आगे बढ़ने का **एक विचार-संकल्प किया गया कि संस्था पक्ष-निरपेक्ष रह कर समाज-निर्माण का कार्य-करेगी।** संस्था ने अपने आज तक के अनुभव पर से सर्वोदय-समाज के पास एक माँग भी रखी कि ३ से ६ साल तक की पूर्व प्राथमिक शिक्षा को सर्वोदय के मुख्य कार्यक्रमों में स्थान दिया जाय, क्योंकि मनुष्य की वृत्तियों का 'बंधारण' इसी रूप में होता है। हमारी क्रांति का एक छोर समाज-परिवर्तन है, तो दूसरा छोर व्यक्ति-निर्माण।

---

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ
२ नवंबर सन् १९५६

असुर-संहार की प्रक्रिया !

(विनोबा)

यह कलियुग नहीं है। यह नारायणपरायणता का युग है। इसलिए अपना सब कुछ समाज के लिए अर्पण करने की बात ही यहां उचित होती है। अगर किसी एक शख्स को जमीन दी गयी, तो वह ठीक है या बेठीक, उसका उपयोग वह कैसे करेगा, आदि सवाल पैदा हो सकते हैं, लेकिन जहां समाज को ही सब अर्पण करने की बात आ गयी, तो पैसा बैंक में रखने की ही बात हुई। मनुष्य के लिए सबसे सुरक्षित बैंक अगर कोई है, तो समाज है। वहां अपना पैसा सुरक्षित रहेगा और उसका व्याज इतना मिलेगा कि हम अपने दो हाथों से वह ले ही नहीं सकेंगे। इस बात की पहचान भी सहज होती है। कोई भी नदी, कितनी भी बड़ी क्यों न हो, समुद्र में जाने से डरती नहीं। कावेरी भी अपना पानी समुद्र में उंड़ेल देती है और छोटा-सा नाला भी। बड़ी गंगा अंत में सागर में ही मिल जाती है, क्योंकि सबका गंतव्य स्थान समुद्र ही है और वहीं से सबको पानी मिला है। इसलिए जहां समाज को देने की बात आती है, वहां लोगों को उसे समझने में मुश्किल नहीं मालूम होती है।

यह सारा इस युग में बन रहा है, क्योंकि यह ज्ञानविज्ञानमय युग है ! पुराना युग केवल ज्ञानमय युग था। वे लोग आत्मज्ञान से ही समझाते थे और आत्मज्ञान से ही मांगते थे। आत्मज्ञान का ग्रहण सबको आसानी से नहीं होता है। इसलिए कुछ लोग उनकी बात सुनते थे और कुछ लोग नहीं। अब इस युग में जो बात कही जा रही है, वह आत्मज्ञान भी कहता है और विज्ञान भी कहता है कि 'तुम अपना सब कुछ दे दोगे, तो श्रेय ही होगा।' पहले भी वह यही कहता था और आज भी कहता है: "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।" प्राचीन काल में समाज के सामने आत्मज्ञान की मांग त्याग की ही रही और आज भी है। उसका फल वे इस प्रकार बताते थे कि उससे आत्मा का श्रेय होगा, आत्मोन्नति होगी। आज हम क्या कह रहे हैं ? हम आत्मज्ञान की वह मांग कर ही रहे हैं, साथ-साथ विज्ञान की भी मांग कर रहे हैं। हम समझाते हैं कि भाइयो, इस विज्ञान-युग में अलग-अलग रहोगे, तो टिक नहीं सकोगे। एक हो जाओगे, तो ही टिक सकोगे। तुम्हारा श्रेय और कल्याण तो एक होने में ही है। वह प्राचीन काल में भी था और आज भी है, परंतु तुम्हारा ऐहिक जीवन भी उससे सुधरेगा, ऐसा विज्ञान कह रहा है। आज व्यक्तिगत मालकियत के असुर पर एक तरफ से आत्मज्ञान का प्रहार हो रहा है और दूसरी तरफ से विज्ञान का भी प्रहार हो रहा है !

(करटुपालेयम्, कोइंबतूर, १४-१०-'५६)

सर्वोदय की दृष्टि :

नयी तालीम पर राजाजी

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने गांधीग्राम के बुनियादी शिक्षक-सम्मेलन में भाषण देते हुए कहा :

"हम सब गांधीजी को प्यार करते थे तथा पूरे तौर से उनका अनुसरण करते थे। अतः जब उन्होंने बुनियादी तालीम की बात कही, तो हम सबने श्रद्धापूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। हमारे लिए यह अच्छा था, लेकिन अन्ततोगत्वा यह बात नयी तालीम के लिए अच्छी चीज नहीं रही। अब हमारे लिए आवश्यक है कि हम बुनियादी तालीम का सर्वांगीण अध्ययन करें और यह समझने की कोशिश करें कि वस्तुतः बुनियादी तालीम द्वारा गांधीजी करना क्या चाहते थे ? न कि हम बार-बार उनका मन्त्रोच्चारण करके उसीमें खो जायें।"

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी सूक्ष्मदर्शी विचारक हैं। अतः बुनियादी तालीम के बारे में उनकी पकड़ सूक्ष्म होगी, यह स्वभाविक है। आज देश भर में बुनियादी शिक्षा का मन्त्र-व्रत जप हो रहा है, लेकिन उसके सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक पहलुओं पर विचार नहीं हो रहा है। शिक्षा के कार्यक्रम के पीछे हमेशा एक सामाजिक लक्ष्य रहता है। स्वभावतः गांधीजी का भी ऐसा ही लक्ष्य रहा है। स्वतन्त्रता-संग्राम के सिलसिले में वे मुल्क को आजाद ही नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे श्रम और साम्य के आधार पर एक ऐसा नया समाज बनाना चाहते थे, जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का आर्थिक शोषण या राजनैतिक दलन न हो सके।

गांधीजी अपनी नयी तालीम को समाज-परिवर्तन का माध्यम मानते थे। वे समाज की मूल इकाइयों को स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। वे पूंजी के स्थान पर श्रम का अधिष्ठान देखना चाहते थे और चाहते थे कि समाज की व्यवस्था का आधार संचालन-पद्धति न हो कर सहकार-पद्धति हो। जो लोग बुनियादी शिक्षा का आयोजन करना चाहते हैं, उनका सामाजिक तथा राजनैतिक लक्ष्य तदनुरूप नहीं होगा, तो तालीम का यह कार्यक्रम लक्ष्यहीन होने के कारण दिशाहारा हो जायगा। यही कारण है कि आज की बुनियादी शिक्षा जनता को समाधान नहीं दे पा रही है।

वस्तुतः भारतीय जनता तथा उसके प्रतिनिधि आर्थिक पूंजीवाद तथा राजनैतिक संचालनवाद के कायल हैं। ऐसी हालत में गान्धीजी के दिये हुए मन्त्र का जप करने से उसका वास्तविक स्वरूप निखर नहीं सकता है। अतएव यह आवश्यक है कि भारतीय जनता पहले गान्धीजी की समाज-व्यवस्था के विचार को स्वीकार करे, तभी नयी तालीम को अपनाने का प्रयास करे, नहीं तो इसकी चेष्टा में गरीब मुल्क की जनशक्ति तथा धन का अपव्यय हो जायेगा। आज देश में बुनियादी शिक्षा चलाने के लिए काफी व्याकुलता दिखाई दे रही है। ऐसी हालत में श्री राजगोपालाचारी जैसे मनीषी की चेतावनी सामयिक है।

श्रमभारती, खादीग्राम
ता. १६-१०-'५६

—धीरेन्द्र मजूमदार

गीता और अहिंसा

(रोहित मेहता)

अहिंसा भारतीय संस्कृति की एक महान् विशेषता है और गीता एक दृष्टि से अहिंसा का प्रतिपादक ग्रंथ ही है। मेरा यह विधान कुछ आश्चर्यजनक लगेगा, जब कि कृष्ण ने अर्जुन को कहा था—'माम अनुस्मर युद्ध च।' वस्तुतः 'अहिंसा' शब्द को आज विकृत अर्थ प्राप्त हो गया है। अहिंसा याने शारीरिक हिंसा का अभाव ही नहीं; 'अप्रतिकार', 'नॉन्रेजिस्टंस', यह अहिंसा का सच्चा स्वरूप है। शरीर भले ही हिंसा न करे, मन तो हिंसात्मक विचारों से एवं प्रतिकार की भावनाओं से आप्लावित रह सकता है। लेकिन मन में किसी भी तरह की आसक्ति न हो और सुरक्षितता और आराम की भावना से मन ने कोई सहारा भी न ढूँढ़ा हो, तो प्रतिकार की कल्पना का जन्म ही नहीं हो सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति में अहिंसा के साथ अपरिग्रह (नॉन्पज़ेशन) है। अपरिग्रह की भूमिका पर से अहिंसा की कल्पना कर सकते हैं। निष्काम और निरासक्त होने की सीख ही गीता ने दी है।

गीता के इस महान् तत्त्वज्ञान की बुनियाद पर यदि हम भारतीय संस्कृति का विशाल मंदिर खड़ा करें, तो कितने ही बड़े तूफानों के सामने वह डगमगायेगा नहीं।

(नागपुर, २८-९-'५६)

---

www.vinoba.in

सर्व-सेवा-संघ के चुनाव-प्रस्ताव से उठने वाले प्रश्न

(धीरेन्द्र मजूमदार)

प्रश्न :–राज्य-विघटन का जो संकेत आपने अपने चुनाव-प्रस्ताव-संबंधी लेख में किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य-विघटक लोग राज्य-संघटन के काम में सहयोग नहीं दे सकते। परन्तु जब तक राज्य-शासन है, जनता जब तक शासनाधीन है, तब तक उसका सम्बन्ध राज्य के साथ कैसा रहेगा? क्या शासन के नियंत्रण और उसके विघटन के लिए भी उसके निर्माण में कुछ हिस्सा नहीं लिया जा सकता? निर्माण से मतलब सत्ता लेने से नहीं, चुनाव या अन्य किसी पद्धति से है।

राज्य-विघटन बनाम संघटन

उत्तर :–यह तो स्पष्ट है कि जो लोग राज्य का विघटन करना चाहते हैं, वे राज्य के संघटन में दिलचस्पी नहीं लेंगे। और यह भी स्पष्ट है कि जब तक कि विघटन की चेष्टा सफल नहीं होती है, तब तक राज्य द्वारा ही समाज का संचालन होता रहेगा और विघटन की चेष्टा करने वाले भी अनिवार्यतः उस शासन के नीचे रहेंगे। हम जब विदेशी राज्य को विघटित करने की चेष्टा करते थे, उस समय भी जब तक विदेशी राज्य का विघटन नहीं हुआ था, तब तक हम उन्हींके शासनाधीन रहे थे। फर्क इतना ही होगा कि उस समय हमारा संबंध उसके साथ असहयोग तथा संघर्ष का था, अब हम उसके प्रति उदासीन रहेंगे।

शासन के नियंत्रण में हिस्सा लेने का मतलब शासन में भाग लेना ही है। वस्तुतः मनुष्य उसी चीज को नियंत्रण में रखने की कोशिश करता है, जिसे वह रखना चाहता है। मिसाल के तौर पर पार्लियामेंट के विरोधी दल, जो शासन-व्यवस्था पर अपना नियंत्रण रखना चाहते हैं। इसका मतलब यह है कि वे शासन-व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं। वस्तुतः शासन का नियंत्रण करने वाला विरोधी दल, शासन का अंग हो जाता है। यही कारण है कि इंग्लैंड के विरोधी दल के नेता को राज्यकीय कोष से वेतन मिलता है।

तो विघटन के लिए ही निर्माण-कार्य में कुछ हिस्सा लेना सम्भव नहीं है। हाँ, विघटन के लिए राज्यकीय कार्यक्रम में कहीं-कहीं सहयोग किया जा सकता है। शर्त यह है कि वह कार्यक्रम विघटन के उद्देश्य की सिद्धि में हो। मिसाल के तौर पर देश की बेकारी की समस्या हल करने के लिए राज्य की ओर से खादी-ग्रामोद्योग का कार्यक्रम चालू किया गया है। यह काम जहाँ बेकारी की समस्या को हल करता है, वहाँ ग्राम के स्वावलम्बन-संकल्प में भी मदद करता है। देहाती जनता जिस हद तक अपनी शक्ति से स्वावलम्बी हो सकेगी, उस हद तक राज्य की आवश्यकता नहीं रहेगी। अतएव ग्राम-राज्य के विचार-प्रचार के साथ अगर सरकार द्वारा प्रसारित खादी तथा ग्रामोद्योग का काम चलाया जाय, तो राज्य-विघटन के काम में मदद मिल सकती है। उस हद तक सरकारी कार्यक्रम से सहयोग भी किया जा सकता है।

प्रश्न :–"हमारा सम्बन्ध विदेशी राज्य से असहयोग का था और आज की राज्य-पद्धति में उदासीनता का," यह फर्क समझ में नहीं आया। क्या इस राज्य-पद्धति से असहयोग की आवश्यकता नहीं होगी?

उदासीनता और असहयोग

उत्तर :–उदासीनता असहयोग का ही सौम्यतर स्वरूप है। आपको मालूम होगा कि हिंसक शक्ति जितनी विराट होगी, उतनी ही वह अधिक शक्तिशाली भी होगी। उसी तरह अहिंसक सत्याग्रह जितना सौम्य होगा, उतना ही वह अधिक शक्तिशाली भी होगा। अंग्रेजी राज्य-विघटन की चेष्टा से हम राज्य-पद्धति या संस्था का विघटन करने की कोशिश नहीं करते थे, बल्कि राज्य-संस्था का विदेशियों के हाथ से संचालन अपने देशवालों के हाथ में लाना चाहते थे। वह काफी छोटा काम था। तब स्थूल असहयोग से काम चल गया था, लेकिन आज हम राज्य-संस्था को ही विघटित करना चाहते हैं। इसके लिए सामान्य असहयोग काफी नहीं होगा। इसलिए हम सूक्ष्मतर यानी सौम्यतर असहयोग अर्थात्, सचेतन-उदासीनता की बात करते हैं।

प्रश्न :–अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति के सुझाव के द्वारा आपने मौजूदा परिस्थितियों के साथ कुछ समझौता किया है, ऐसा प्रतीत होता है। यह समझ में नहीं आया। फिर अप्रत्यक्ष चुनाव में से हम शासन-मुक्ति की ओर किस प्रकार बढ़ सकेंगे, यह प्रश्न भी शेष रह जाता है!

अप्रत्यक्ष चुनाव में से शासन-मुक्ति

उत्तर:–अप्रत्यक्ष चुनाव-पद्धति के सुझाव के माने यह नहीं है कि अगर ऐसा हो जाये, तो हम उसमें शामिल होंगे। यह सिर्फ आज के चुनाव के विनाशकारी नतीजे को कुछ अंश तक शान्त कर सकता है। यह सुझाव उनके लिए है, जो शासन-पद्धति को मानते हैं, जिस-तरह कि सर्व-सेवा-संघ के मूल प्रस्ताव में भी जो लोग चुनाव में भाग लेना चाहते हैं, उनके लिए कुछ सुझाव पेश किये गये हैं।

अप्रत्यक्ष चुनाव से शासन-मुक्ति के काम कुछ हल हो सकते हैं, क्योंकि उससे नीचे की इकाई की जनता में कर्तृत्व भावना का बोध जाग्रत हो सकता है, जिससे शासन-मुक्ति के विचार समझाना आसान हो जायेगा, क्योंकि शासन-मुक्ति का मूल आधार जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से कर्तृत्व का बोध ही है।

करुणाघन बुद्ध से!

हिंसाय उन्मत्त पृथ्वी, नित्य निठुर द्वन्द्व
घोर कुटिल पन्थ ता'र लोभ जटिल बन्ध।

नूतन तव जन्म लागि' कातर सब प्राणी
कर'त्राण महाप्राण, आन' अमृतवाणी,
विकसित कर' प्रेमपद्म चिर मधु-निष्यन्द।

शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल, कर' कलंकशून्य॥

एस' दानवीर दाओ त्याग कठिन दीक्षा,
महाभिक्षु लओ सबार अहंकार भिक्षा।
लोक लोक भुलुक शोक खण्डन कर' मोह,
उज्ज्वल होक् ज्ञान-सूर्य उदय-समारोह,
प्राण लभुक् सकल भुवन नयन लभुक् अन्ध।

शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर' कलंकशून्य॥

क्रन्दनमय निखिल हृदय तापदहन दीप्त,
विषय-विष-विकार-जीर्ण दीर्ण अपरितृप्त।

देश-देश परिल तिलक रक्त कलुष ग्लानि,
तव मंगल शंख आन' तव दक्षिण पाणि।
तव शुभ संगीत राग तव सुन्दर छन्द।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तपुण्य,
करुणाघन, धरणीतल कर' कलंकशून्य॥*

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

* अर्थः–हिंसा से धरणी उन्मत्त है, नित्य निष्ठुर द्वन्द्व हो रहा है। उसका (धरणी का) पंथ घोर टेढ़ा-मेढ़ा है और उसका बंधन लोभ-जटिल है। तुम्हारे नूतन जन्म के हेतु सब प्राणी कातर हो रहे हैं। हे महाप्राण, (आकर) त्राण करो, अपनी अमृत-वाणी को लाओ, चिरन्तन मधु के निर्झर प्रेम-पद्म को विकसित करो। हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणा के घन (तुम) पृथ्वीतल को कलंक-शून्य कर दो।

हे दानवीर, आकर त्याग की कठिन दीक्षा दो। हे महाभिक्षु, सबके अहंकार की भिक्षा ग्रहण करो। सभी लोक शोक भूल जावें, (तुम) मोह का अन्त कर दो। ज्ञानसूर्य का उदय-समारोह आलोकित हो। सभी भुवन प्राण-प्रेरित हों (और) अन्धे नयनलाभ करें। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्त-पुण्य, हे करुणाघन, पृथ्वीतल का कलंक शून्य कर दो।

ताप की ज्वाला से दीप्त निखिल हृदय क्रन्दनमय है, और (सब) विषय विष के विकार से जीर्ण, नष्ट-प्राय और अतृप्त है। देश-देश ने रक्त-कलुष और ग्लानि का टीका पहन लिया है। (तुम) अपने मंगल-शंख को लाओ, अपना दाहिना हाथ बढ़ाओ। हे शान्त, हे मुक्त, हे अनन्तपुण्य, हे करुणाघन, पृथ्वीतल को कलंक-शून्य कर दो।

www.vinoba.in

ग्राम-निर्माण की दिशा में

(डॉ० रविशंकर शर्मा)

आज देश में जहाँ देखो, निर्माण की बातें हो रही हैं। पंचवर्षीय योजनाएँ बन रही हैं और उनकी मार्फत निर्माण और विकास का काम किया जा रहा है। 'वेलफेअर स्टेट्' द्वारा नियोजित कार्यक्रमों का कितना महत्त्व होता है, यह सर्वविदित है, फिर सर्वोदयवाले अपनी और अलग विकास-योजनाएँ क्या बनाना चाहते हैं,' इस प्रश्न के उत्तर की आवश्यकता और उपयुक्त अवसर आज उपस्थित है। भूदान-यज्ञ-आंदोलन की मार्फत देश की जनता में एक नयी चेतना का निर्माण हुआ है। भूमि-हीनों में बाँटने के लिए भूमि प्राप्त हुई। वितरण भी किया गया। पर प्रश्न उपस्थित है कि अब आगे क्या करना है?

चरखा-संघ, तामीली संघ, ग्रामोद्योग-संघ, आदि संस्थाएँ स्थापित करने के पीछे गांधीजी की नव निर्वाण की ही दृष्टि थी। भावी भारत का नक्शा उन्हें प्रस्तुत करना था। अब तक ये काम भूमि के अभाव में तेजोहीन थे। पर आज की पार्श्वभूमि में उन कामों का क्रांतिकर उपयोग हमें सोचना होगा, उनका आचरण करना होगा। स्पष्ट है कि सरकारी योजनाएँ ऐसी क्रांतिकर नहीं हैं। फिर सरकारी योजनाएँ तीन मुख्य दोषों से युक्त भी हैं। एक तो सही दृष्टिकोण उनमें नहीं है। दूसरे, आवश्यक रचनात्मक जानकारी भी नहीं है। तीसरे, काम करने का ढंग (Approach) भी विकास की दृष्टि से बहुत विचित्र है। हमें अपनी योजनाओं में से ये दोष तो हटाने ही हैं, उनका क्रांतिकर स्वरूप भी नष्ट नहीं होने देना है।

गया के इलाके का निर्माण-कार्य

सर्वोदय की दृष्टि से काम करने वालों के द्वारा नयी परिस्थितियों एवं भूदान-आंदोलन की पार्श्वभूमि में पिछले दो-तीन वर्षों में निर्माण के लिए कई नयी संस्थाओं का जन्म हुआ। बोधगया-संमेलन के बाद ही गया जिले में निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया, जिसके फलस्वरूप कुछ गहरा काम गाँवों में कई स्थानों पर किया गया। गया के कौआकोल थाने में ग्राम-निर्माण-मंडल की स्थापना भी उसी हेतु हुई। प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर अब आगे की योजनाएँ बनाना उचित होगा। ग्रामदानी गाँवों में या बड़े-बड़े चकों में नये गाँव बसा कर कुछ प्रयोग करने की योजना बिहार में आज बन रही है। दूसरे प्रदेशों के बारे में भी विचार-विनिमय हो रहा है। इस थाने में भी दो स्थान चुने हैं। एक है, गायघाट (ग्रामदानी) और दूसरा है, कपसिया-रघवाँ टाँड़ (नया गाँव बसा कर)। गायघाट में कुछ काम हो रहा है। कपसिया में अभी हाथ ही लगाया है। बसने वाले भूमिहीनों के जैसा उत्साह और लगन हममें किसीमें नहीं है। समाज में स्वार्थी वर्ग की विरोध की हल्की-सी गंध भी है, कार्यकर्ताओं ने उचित मार्गदर्शन और साधनों की प्रत्यक्ष मदद दी, तो एक बहुत बड़ा काम इस भाग में यह होगा एवं कई आक्षेपों का समाधान लोगों को मिल जायगा। इससे सर्वोदय-योजना की बुनियाद देखने को मिलेगी और हम समाज की क्या और कैसी रचना चाहते हैं, उसका छोटा स्वरूप भी लोगों के सामने आ सकेगा। भाषण लेखादि लोग काफी पढ़-सुन चुके हैं। यदि जिज्ञासा केवल जानने तक ही रही, तब तो भयंकर निराशा होगी।

कपसिया-रघवाँ टाँड़ से प्रसिद्ध है। भूमि ३०९ एकड़ है। इसमें बसने वाले आज जोगाचक के भूमिहीन है। कौआकोल, पहाड़पुर, तरौन, रघवा, सरौनी वालों को भी जमीन दी जायगी। स्वेच्छा से, उत्साहपूर्वक जोगाचक से २५ परिवार कार्य में लगे हैं। मैंने ऐसा उत्साह भूमिहीनों में इसके पूर्व कहीं नहीं देखा था। आठ दिन में ५० एकड़ की गेड़ा बंदी कर लेना, १० बीघा कुर्थी लगा लेना और एक कुएँ में हाथ लगा देना, जिसकी चौड़ाई २० फीट और गहराई ५ फुट हो गयी है, प्रेरणादायी उत्साह का प्रतीक है। इसमें ३३ एकड़ जमीन जंगल-विभाग के अधीन है। उसकी मुक्ति का प्रयास जारी है। इस नये गाँव के बसने की सूचना जब गाँवों में फैली, तो कुछ विरोधी तत्त्व भी सामने आये। वे कहने लगे : (१) हमारा काम फिर कौन करेगा? (२) गोचर भूमि का क्या होगा? पर गोचर भूमि की व्यवस्था के लिए ५० एकड़ जमीन छोड़ी जा ही रही है, जिसमें अच्छी किस्म की घास उगाने की योजना है। जंगल जाने का रास्ता भी दिया जा रहा है। दूसरे, गोपालन के लिए इतने से काम नहीं चलेगा। हर किसान को अपनी खेतिहर जमीन का एक हिस्सा चारा उगाने के लिए रखना चाहिए। उसमें बदला-बदली होगी, तो जमीन भी सुधरेगी। काम के बारे में शंका निरर्थक है। ये लोग मेहनती और काफी सहयोग से काम करते हैं। कृतज्ञता भी इनमें कम नहीं है। आज इनमें से एक भी ऐसा नहीं सोचता है कि किसान का काम नहीं करेंगे। फिर हम लोग भी तो हैं, इन्हें समझाने के लिए। इसलिए हमको आश्वासन देने में कोई भी हिचक नहीं होती। अतः कौआकोल की जनता को इस पवित्र कार्य में पूरा-पूरा सक्रिय सहयोग देना चाहिए। जो सबसे अधिक गिरा है, उसकी व्यवस्था सर्वप्रथम करने से ही समाज का उत्थान होगा। अन्त्योदय, सर्वोदय का प्रारम्भ है।

इस वर्ष २५ घर, ५ कुएँ, १ ग्रामशाला और प्रत्येक परिवार के पीछे कम-से-कम ४ बीघा और अधिक-से-अधिक ६ बीघा जमीन आबाद हो सके, इतनी सिंचाई के लिए आहर की व्यवस्था – इतना करना अत्यन्त आवश्यक है। साधन के रूप में भूदान-समिति ने बैल, कुदालें, बीहन देना स्वीकार किया है। निर्माण का व्यय का ब्यौरा भेजा जा चुका है, जिसकी राशि ४६ हजार रु. होती है। सरकारी हरिजन-विभाग भी मदद करेगा।

बाहरी मदद के विषय में दो शब्द कहना अनुचित न होगा। इसका बहुत ही कटु अनुभव हम लोगों को इस इलाके में हुआ है। इसलिए यह निश्चय किया गया है कि जितना गाँववाले करेंगे, वही मुख्य बुनियाद होगी। उनका उत्साह जितना होगा, उतना ही काम बढ़ाया जायगा। मदद के रूप में जो बाहर की सहायता होगी। कार्य की पहल आदाताओं के हाथ में होगी।

सिंहावलोकन

बिहार का कार्यक्रम था भूरि-दान, प्रचुर दान। पर भूरिदान, भूमिदान का कोई कलश नहीं। उसका कलश है, ग्रामदान; अर्थात् जमीन की व्यक्तिगत मालकियत का अन्त। यह प्रयोग मुझे उड़ीसा में करना था। कारण, एक तो उड़ीसा-क्षेत्र उसके लिए विशेष अनुकूल था। उड़ीसा की गरीबी, गरीबी के लिए मशहूर हिन्दुस्तान में भी अद्वितीय ही है। मालिकी अगर गरीब पहले नहीं छोड़ेंगे, तो और कौन छोड़ेगा? श्रीमानों की मालकियत छूटती है, अगर गरीब उसे छोड़ते हैं। भारत का यह सौभाग्य है कि कोई-कोई श्रीमंत भी मालिकी छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु इस सौभाग्य को ज्यादा तानने से काम न चलेगा। ज्यादा तानने से वह टूट जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रीमंतों की जितनी सहानुभूति मिले, उसे प्राप्त करते हुए गरीब अपनी मालिकी छोड़ने का प्रयोग यशस्वी करें। यही श्रीमंती का गढ़ फतह करने का कुशल उपाय हो सकता था। उसके लिए उड़ीसा का क्षेत्र अनुकूल था। इसके सिवा उड़ीसा में जनता के लिए सद्भावना और प्रेम से प्रेरित (हनुमान आदि नायकों सहित) वानर-सेना भी सज्ज थी। इसलिए उड़ीसा में सर्वोदय का भाग्य आजमा देखने का विचार किया था।

मैंने बिहार की अपनी यात्रा को "आनन्द-यात्रा" नाम दिया था। उसके बाद बंगाल की छोटी "प्रेम-यात्रा" पूरी करके उड़ीसा में "शक्ति-यात्रा" का आरंभ करना था। यह "शक्ति-यात्रा" लगभग सात-आठ महीने चली। पूर्वार्ध में हुआ शक्ति का शोध, उत्तरार्ध में हुआ उसका दर्शन।

कोरापुट जिले में उत्तरार्ध शुरू हुआ और उसी जिले में वह समाप्त हुआ। जैसे शिवाजी ने भरी बरसात में जंजीरा के किले पर हमला किया, वैसे ही उड़ीसा के कार्यकर्ताओं ने कोरापुट के मलेरिया-शीतल चातुर्मास में कोरापुट पर हमला किया। वे एक-एक कर बीमार पड़ते थे और दुरुस्त होकर फिर मैदान में आ जाते थे। पुराण में कहा है कि चातुर्मास में देवता भी सोते हैं। परन्तु सेवकों ने चातुर्मास में जाग कर नये इतिहास की सृष्टि की। कोरापुट में सैकड़ों ग्रामदान में मिले और सर्वोदय के शरीर पर मुट्ठी भर मांस चढ़ा। उसके बाद से बाबा का मुक्त विहार चालू है। वह भी तमिलनाड में थोड़ा 'सोपाधिक' हो गया है। वहाँ से छूटने पर निरुपाधिक मुक्त-विहार शुरू होगा, ऐसी बाबा को आशा है।

शक्ति का शोध और शक्ति का दर्शन (उड़ीसा की यात्रा का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध) हमारी दो बेटियों ने इन दो पुस्तकों में चित्रित* किया है। जंगल का प्रवास-वर्णन करने वाले विरले ही होते हैं। कारण, वर्णन करने की शक्ति रखने वाले जंगलों में नहीं जाया करते और जंगलों में जाने वाले वर्णन कर नहीं सकते। रामायण में तुलसीदासजी ने कहा—'गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी।' पर सर्वोदय-विचार की यह सामर्थ्य है कि उसके कारण वाणी को नयन मिले और नयन को वाणी।

भूदान-यज्ञ यात्रा, जिला, कोइंबतूर —विनोबा

---

* निर्मला देशपाण्डे लिखित "क्रांति की राह पर" और कुसुम देशपाण्डे लिखित "क्रांति की ओर" पुस्तकों के लिए लिखी प्रस्तावना से। प्रकाशक : सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी। मूल्य प्रत्येक का १)–१) रु०

www.vinoba.in

विनोबा प्रवचन-सार

आजकल सारे कार्यकर्ता पॉलिटिकल प्रोग्राम में छिप-से गये हैं। भूदान के लिए गाँव-गाँव जाने के लिए कोई कार्यकर्ता तैयार नहीं। और वहाँ सिवाय झगड़ा और इलेक्शन के दूसरा कोई प्रोग्राम नहीं है। पर जहाँ भीड़ ज्यादा है, वहाँ भीड़ क्यों करते हो? भूदान के प्लेटफार्म पर बिलकुल भीड़ नहीं है। गरीबों के वास्ते काम करना है, तो वहाँ जाओ। परंतु लोगों के ध्यान में अभी तक नहीं आया है कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोकशक्ति बनाने से ही देश की भलाई होती है और वह शक्ति सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में क्रान्ति करने से ही आती है! सत्ता के स्थान पर रह कर चंद लोगों को काम करना पड़ता है और वह करना भी चाहिए, परन्तु प्राइम मिनिस्टर कितने चाहिए? एक प्राइम मिनिस्टर की जगह पर १०-१५ लोग भीड़ करेंगे, तो क्या फायदा? एक चुना जायेगा, तो दूसरा मत्सर करेगा। इसलिए इस वक्त समाज की सेवा में जो लगेंगे, वे अधिक-से-अधिक शक्तिशाली कार्य करेंगे। यह अगर ध्यान में आयेगा, तो ज्यादा-से-ज्यादा कार्यकर्ता इस कार्यक्रम में आवेंगे। हमारा विश्वास है कि हमारी बात सभी कार्यकर्ता तब समझ लेंगे, जब वे देखेंगे कि बाबा की ताकत दिन-ब-दिन 'बढ़' रही है और उनकी ताकत दिन-ब-दिन 'बँट' रही है। तब वे मन में सोचेंगे कि बाबा की शक्ति क्यों बढ़ रही है? बाबा की शक्ति इसलिए बढ़ रही है कि शक्ति का जहाँ स्रोत है, वहाँ बाबा पहुँचा है और जहाँ शक्ति का स्रोत नहीं, वहाँ आप घूमते हैं।

स्वराज्य निरस बनाने की राह

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सारा ध्यान लोकनीति बनाने में और लोकशक्ति विकसित करने में लगना चाहिए था। फिर भी जब तक कुल लोगों में स्वराज्य-शक्ति नहीं आयी, तब तक राज्य चलाना पड़ता है। तो कुछ लोग यह चला सकते हैं, परन्तु स्वराज्य-शक्ति विभाजित होनी चाहिए, गाँव-गाँव में वह बँटनी चाहिए, इस प्रयत्न में कार्यकर्ताओं की मुख्य ताकत लगनी चाहिए। पर यह जब तक नहीं हुआ है, तब तक मध्यवर्ती और प्रांतिक कारोबार भी चलेंगे और वह चलाने के लिए कुछ लोगों को ध्यान भी देना होगा, परन्तु उस काम में बहुत ज्यादा भीड़ नहीं होनी चाहिए, क्योंकि जहाँ बहुत ज्यादा लोग जाते हैं, वहाँ उनका ज्यादा उपयोग नहीं होता है। फिर वहाँ होड़ और परस्पर-द्वेष चलता है।

(उलगमूकथन, द. अर्काट, (१८-७-'५६)

विद्या कैसी हो?

विद्या वीर्यवती होनी चाहिए, पर वह वीर्यवती तब होगी, जब उस पर अमल होगा। जैसे, बड़ी फजर उठने से बुद्धि विकसित होती है, इसका ज्ञान तो बच्चे को मिल गया, लेकिन शरीर पर काबू नहीं रहा और वह निद्रा का ही गुलाम बना रहा, तो वह ज्ञान निष्फल है। आम को खूब मंजर लग गया, लेकिन फल नहीं आये और जोर के पाले से फूल भी गिर गये, तो क्या उपयोग? अतः विद्या केवल फूल वाली नहीं, फल वाली भी चाहिए।

विद्या के साथ धृति याने अपने पर काबू रखने की शक्ति हो, तो वह काम की है। घोड़े को वश में करने के लिए लगाम और चाबुक, दोनों की जरूरत होती है। बुद्धि चाबुक है, धृति लगाम। मोटर में एक यंत्र गति बढ़ाने का, दूसरा दिशा बदलने का होता है। दिशा बदलने का यंत्र बुद्धि है, गति बढ़ाने का यंत्र धृति है। "क्या करना योग्य है", यह बुद्धि बतायेगी और "उचित करने की ताकत" धृति पैदा करेगी। दोनों को मिला कर विद्या वीर्यवती होती है। आज बुद्धि देने की तो योजना है, लेकिन धृति के विकास की कोई योजना नहीं है। दिमाग बड़ा हो जाता है, हाथ छोटे रह जाते हैं, इसलिए जीवन में असंतोष रहता है। केवल एक का विकास काफी नहीं होता है। किसी के 'हाथीपाँव' हो जाय, तो वह विकास नहीं कहा जा सकता! विकास तो सब अवयवों का समान रूप से ही होना चाहिए।

जितनी बुद्धि, उतनी धृति और उतनी ही शांति है, तो ही वह विकास है, अन्यथा वह रोग है। विद्या के साथ निर्भयता न सिखायी जाय, तो लड़के डरपोक बन जाते हैं। फिर मामूली बिच्छू से भी डरते हैं, साँप से डरते हैं और जहाँ देहात के बच्चे भी अँधेरे में खेतों में जाते-आते हैं, काम करते हैं, वहाँ ये अँधेरे से भी डरते रहते हैं।
(पुलावाकाली पालयम्, ५-९-'५६)

जब संपत्ति गेंद बनेगी!

एक कुँएँ का उद्घाटन करते समय मुझे 'कुरल' का एक वचन याद आया कि 'किसी उदार मनुष्य के पास जो भी सम्पत्ति है, वह सबकी है'—जैसे गाँव का कुँआँ हो और वह खूब भरा हुआ हो, तो किसीको उसका मत्सर नहीं मालूम होता है। लोग समझते हैं कि सारा पानी हमारे लिए है और वह उदार मनुष्य समझता है कि वह सबके लिए है। आपके घर की लड़की आप अपने घर में नहीं रखते हैं, उसे दूसरे के घर भेज देते हैं, दूसरा अपनी लड़की आपके घर भेज देता है। इस तरह से परस्पर-व्यवहार चलता है, तभी समाज का जीवन परिशुद्ध रहता है। फुटबॉल के गेंद में अगर एक ही खिलाड़ी गेंद पकड़ रखेगा, तो खेल ही खतम होगा। लेकिन वह लात मार कर दूसरे के पास उसे भगाता है। दूसरा तीसरे के पास भगाता है, तब खेल चलता है। उसी तरह संपत्ति भी इधर-उधर फेंकी जायगी, तब खेल चलेगा।

हमारा कल्पवृक्ष

एक कल्पवृक्ष है, जिसकी ३६ करोड़ शाखाएँ हैं। उसके नीचे बैठ कर जो माँग करो, सो मिलता है। आपको यह कल्पवृक्ष की खूबी मालूम नहीं। सरकार को पैसे की जरूरत होने पर वह लोन (कर्ज) लेती है, लेकिन बाबा लोन (कर्ज) नहीं माँगता है, बल्कि हक माँगता है। वह हर एक से पूछता है कि तुम्हारे घर में बाबा का हिस्सा है न? तो, वे कहते हैं न कि हाँ है! सरकार कर्ज लेती है, तो उसके लिए मर्यादा है, परंतु बाबा के संपत्तिदान के लिए कोई मर्यादा नहीं है।

हनुमान बनोगे या रावण?

यह हमारा 'हनुमान' (कोइंबतूर के एक धनी भाई) घूमता रहता है। जब वे भवानी में हमसे मिलने आये थे, तब उन्होंने कहा था कि हम भूदान का काम करना चाहते हैं। हमने उनसे कहा कि 'तुम तो मेरे हनुमान हो।' तो अब वह क्या कहेगा? क्या वह कहेगा कि "मैं हनुमान नहीं हूँ, मैं रावण हूँ!" उसे हनुमान बनना ही था। जिस तरह बच्चे माता-पिता पर विश्वास रखते हैं, उसी तरह हमारा जनता पर विश्वास है। लोग कहते हैं कि श्रीमान् लोग लूटने वाले होते हैं। हम कहते हैं कि वह हाथ से लूटते हैं, दिल से नहीं लूटते हैं। उनका दिल कैसा है, हम जानते हैं। आज की समाज-रचना बिगड़ गयी है, व्यक्ति-व्यक्ति अलग पड़ गये हैं। प्रेम की योजना नहीं है, पैसे का महत्त्व बढ़ा है, इसलिए वे लूटते हैं, परंतु हाथ से, दिल से नहीं।

भोगग्रस्त भी भोग की नहीं, त्याग की बात सुनते हैं!

बाबा भोग का उपदेश देता, तो लोग सुनने के लिए नहीं आते। वे भोग में ग्रस्त हैं, फिर भी भोग का उपदेश सुनना नहीं चाहेंगे। त्याग का ही उपदेश सुनना चाहेंगे! इसका अर्थ यह है कि हृदय में भोग नहीं है, बल्कि त्याग है। इसलिए हम पूर्ण विश्वास के साथ समाज के पास जाते हैं और हर घर से माँगते हैं। अभी तक हमारी आवाज सब दूर फैली नहीं है, परंतु हवा में फैली है। आज सुबह हमने एग्रीकल्चर कॉलेज में एक चित्र देखा कि ऊपर आकाश में मेघ आये हैं, लेकिन नीचे गिरते नहीं हैं! अब विज्ञान ने आकर्षण की ऐसी युक्ति निकाली है, जिससे कि उन मेघों को भी खींच कर ला सकें। हमें वह विज्ञान मालूम हो गया है। आप हमें दस लाख रु० देने आयेंगे, तो हम कहेंगे कि हमें जितना चाहिए, उतना लेंगे और बाकी का आपके ही पास रहने देंगे। याने बाबा की बैंक हर घर में रहेगी।
(वीरकारलम्, कोइंबतूर, २५-९-५६)

माता-पिता का भी कुछ कर्तव्य है!

लोग चाहते हैं कि हमारी बात चलनी चाहिए। इस तरह का अहंकार समाज में भी और घर में भी दिखायी देता है। माता-पिता की सेवा में भी यह बात आती हैं। वे अपेक्षा रखते हैं कि उनकी बात मानी जानी चाहिए। जिस वक्त माता-पिता कहेंगे कि बच्चों को हमारी बात जँचे, तो वे उसे माने, न जँचे तो न माने; तब दुनिया में आजादी की स्थापना होगी। आजादी के लिए एक देश की दूसरे देश पर जो हुकूमत चलती है, उसे हम तोड़ सकते हैं। एक जमात की दूसरे जमात पर जो हुकूमत चलती है, उसे हम तोड़ सकते हैं, परंतु गुरु की शिष्यों पर और माता-पिता की बच्चों पर जो हुकूमत चलती है, उसे हम तोड़ेंगे, तब आजादी आयेगी। उपनिषदों के गुरु इस प्रकार की आजादी देते थे। वे गुरु शिष्यों से कहते थे कि 'यानि अस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतरानि।' हमारे जो सुचरित हैं, उन्हीं पर तू अमल कर; जो सुचरित नहीं हैं, उनका अनुकरण मत कर। इस तरह गुरु अपने शिष्य को पूर्ण स्वातंत्र्य देता है। वैसे ही माता-पिता का काम है, विचार समझाना। बच्चे बात को समझते हैं। इसलिए नहीं मानते हैं, तो नाराजी नहीं होनी चाहिए। इस तरह की वृत्ति माता-पिता में आयेगी, तब सारा समाज बदलेगा, तब सच्ची आजादी स्थापित होगी।
(कोइंबतूर, १-१०-'५६)

---

www.vinoba.in

मनुष्य और जानवर कहाँ भिन्न हैं ?

(विनोबा)

हमारे सामने विविध प्रकार के जीवन का दर्शन होता है। एक दर्शन है, प्राणी-पशु-पक्षी के जीवन का। दूसरा नमूना है, पामर मनुष्य के जीवन का। तीसरा उदाहरण है, ज्ञानियों के जीवन का। ये तीन प्रकार के जीवन स्पष्ट हैं। उनमें भी और अनेक प्रकार हो जाते हैं।

इतने सारे विविध प्रकारों में चैतन्य का प्रकाश हो रहा है। स्वच्छ काँच हो, तो प्रकाश स्वच्छ होता है। अस्वच्छ काँच हो, तो अस्वच्छ प्रकाश-धुंधला-सा प्रकाश होता है। काँच टूटा-फूटा हो, तो तीसरे प्रकार का प्रकाश होगा। जब मैं काँच कहता हूँ, तो मेरा मतलब है, दीपक का काँच। आयना भी हो, तो स्वच्छ आयने का दर्शन अलग होगा, अस्वच्छ का, टूटे-फूटे का, अलग होगा। ऐसे भी काँच होते हैं, जिनमें चेहरा बिलकुल विचित्र दीखता है। उसमें लंबा चेहरा हो, तो चौड़ा दीखेगा, चौड़ा हो, तो लंबा दीखेगा। ऐसे भी काँच होते हैं, जिनमें से देखते हैं, तो सृष्टि लाल, नीली, पीली दीखती है !

दुहरी गाँठ

यह सारा जो विविध दर्शन है, ऊपर के काँच का नमूना ही है। अंदर का रूप एक ही है कि सारे मानव हैं। उनमें भी विविध प्रकार के रूप दीखते हैं। कोई ठगता है, कोई लूटता है, कोई दूसरे को तकलीफ देकर जीवन बिताता है और कोई लोगों का भला करने में ही जीवन बिताता है। ऐसे तीन प्रकार के लोग स्पष्ट दीखते हैं। प्राणी तो शरीर तक ही सीमित रहते हैं। कुत्ता कब भागता है ? जब उसे लकड़ी या पत्थर दिखाते हैं। वह शरीर की तकलीफ से भयभीत होता है। गाय नजदीक कब आती है ? जब हरा घास आपके पास होगा। यह केवल देह का आकर्षण, देह पर प्यार होता है, इसलिए पशु इस तरह आते हैं। देह को किसीने डराया, तो घबड़ा जाते हैं। अपने देह को ही अपना रूप समझते हैं, दूसरों को अपने से भिन्न समझते हैं। यह जानवर का जीवन है। वे एक तो देह के अंदर की चीज़ नहीं पहचानते, देह को पहचानते हैं; और दूसरी बात, अपने ही देह को वे मानते हैं। गाँठ पक्की कब होती है ? जब वह दुहरी होती है। ऐसे देहबुद्धि की दुहरी गाँठ पशु के जीवन में बनी है। पहली गांठ "मैं देह हूँ" और दूसरी गाँठ "मैं यह देह हूँ।"

दोनों गाँठें खुलती हैं, तब हृदयग्रंथी खुलती है। लेकिन पशुजीवन में एक गाँठ जरा-सी खुलती है, "मैं देहरूप हूँ" यह गाँठ नहीं खुलती है। देह को ही पहचानते हैं, परंतु "मैं यही देह हूँ" यह गाँठ ज़रा खुलती है। गाय अपने बछड़े को अपना रूप मानती है। कुतिया भी इस तरह मानती है। इसलिए कुछ थोड़ा-सा प्रेम दिखाती है। यह एक गाँठ खुलती है, लेकिन वह गाँठ भी पूरी तरह से नहीं खुलती है, क्योंकि दुनिया में जितने देह हैं, उतने सारे मेरे रूप हैं, ऐसा तो वह नहीं मानती है।

एक देशभक्त है। वह समझता है कि इस देश में जितने लोग रहते हैं, वे सारे मेरे रूप हैं। परंतु दूसरे देश के देह को वह अपना रूप नहीं मानता है, अपने से अलग मानता है। इसलिए देह को तो व्यापक समझता है, परंतु बहुत ज्यादा व्यापक नहीं समझता है।

ज्ञान की प्रक्रिया

जो देशभक्त है, वह यह मानता है कि मेरे देश में खूब उत्पादन बढ़ना चाहिए। तो उसकी पहली गाँठ खुली है। परंतु पूरी तरह से नहीं खुली है, क्योंकि वह यह नहीं जानता है कि दूसरे देश के लोग भी मेरे रूप हैं। अगर वह मानता कि कुल दुनिया मेरा रूप है, तो यह गाँठ खुलती और फिर भी एक गाँठ रह जाती है, क्योंकि दुनिया याने दुनिया का बाह्य रूप। अंदर के रूप का तो ख्याल है ही नहीं। एक कुँआँ है, पाँच फूट गहरा। उसे हम १० फूट, ५० फूट, फिर १०० फूट गहरा करते हैं। फिर अंदर जो झरना है, वह शुरू होता है। इस तरह गहरा-गहरा खोदते जाना चाहिए। 'मैं देह नहीं हूँ, मैं इन्द्रिय रूप हूँ,' तो पाँच फूट गहरा हो गया। 'मैं इंद्रियरूप नहीं हूँ, मनरूप हूँ,' तो दस फूट गहरा हो गया। 'मैं मनरूप नहीं हूँ, मैं बुद्धिरूप हूँ,' तो ५० फूट गहरा हो गया। 'मैं बुद्धिरूप नहीं हूँ, आनंदस्वरूप आत्मा हूँ;' अब झरना शुरू हो गया, बहने लगा। यह ज्ञान की प्रक्रिया है।

दूसरा एक गड्ढा ५ फूट गहरा है। उसमें अंदर से झरने का पानी नहीं आता, बाहर से बारिश का पानी भरता है। एक शख्स ने सोचा, इतना पानी नाकाफी है। उसने गड्ढे को १५ फूट चौड़ा किया। इस तरह करते-करते आखिर उस मनुष्य ने १०० फूट चौड़ा किया। अब उसमें उतना ज्यादा पानी बारिश का भरने लगा। अंदर से झरना बहने की कोई बात नहीं, व्यापक बनने का यह एक प्रकार है। जो लोग घर का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वहाँ गड्ढा ५ फूट चौड़ा होता है। जो गाँव का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वे ५० फूट चौड़ा करते हैं। जो किसी प्रांत का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, वे १०० फूट चौड़ा गड्ढे को करते हैं और जो सारे भारत का उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, सभी को खानापीना अच्छा मिले, यह सोचते हैं, उन्होंने गड्ढे को हजार फूट चौड़ा किया। फिर भी यह नाकाफी है। सारी दुनिया में खूब उत्पादन बढ़े, यह जिसने सोचा, उसने लाख-लाख फूट चौड़ा किया, देशभक्तों की गहराई तो ५ फूट ही है। लंबाई-चौडाई जरा कमबेशी होगी।

आत्मज्ञान और विज्ञान

हम समझाना चाहते हैं कि आत्मा का विकास दो बाजू से होता है। हमें इतना गहरा खोदना चाहिए कि अंदर से पानी का झरना बहना शुरू हो; और इतना लंबा-चौड़ा खोदना चाहिए कि सारी दुनिया का रूप उसे मिलना चाहिए। एक को कहते हैं, आत्म-ज्ञान की गहराई, और दूसरे को कहते हैं, विज्ञान का विस्तार। जिस देश में **आत्मज्ञान की गहराई और विज्ञान का विस्तार** है, उस देश में सब प्रकार की समृद्धि होगी। आप अपना ही खानापीना देखेंगे, तो वह ५ फूट चौड़ा होगा। आप अपना ही खानापीना नहीं सोचते हैं, दूसरों का भी सोचते हैं, तो आपका दस फीट लंबा हो गया। मेरी मुक्ति हासिल करनी है, तो १० फीट लंबा होगा। इतना पानी नाकाफी है। याने मेरी मुक्ति आपको कम मालूम होती है, इसलिए और गहरा खोदते हैं। इस तरह दुनिया में दो प्रकार के लोगों का दर्शन होता है : कुछ लोग देशभक्त बनते हैं, चौड़ाई बढ़ाते हैं, गहराई नहीं। कुछ लोग आत्मनिष्ठा बढ़ाते हैं और गहराई बढ़ाते हैं, लेकिन चौड़ाई नहीं बढ़ाते ! गहराई है, चौड़ाई नहीं है, तो भी इस दुनिया का काम चलने वाला नहीं है। एक कुँआँ गहरा है, लेकिन उसमें सारी दुनिया के लिए पूरा पानी नहीं है, इस वास्ते केवल लंबा है और साथ ही कोरा गहरा नहीं है, तो किस काम का ? सारी दुनिया को पानी मिलना है, तो लंबाई-चौड़ाई-गहराई, सब ज्यादा करनी होगी। गहराई और विस्तार, दोनों चाहिए।

> प्लानिंग-कमीशन का जो कार्य है, वह लंबाई-चौडाई बढ़ाने वाला है। लोग जो चाहते हैं, उसे सप्लाई करना चाहिए। लोग अन्न चाहते हैं, अन्न देना चाहिए। लोग कपड़ा चाहते हैं, उन्हें मिल का कपड़ा देना चाहिए और सस्ता भी ! हर मनुष्य को ४० गज़ कपड़ा सप्लाय करना चाहिए। लोग सिगरेट-बीडी चाहते हैं, तो अपने देश में बीडी-सिगरेट के कारखाने खोलें, उत्तम बीड़ी-सिगरेट बनाने में देश स्वावलंबी बने। लोगों के बचाव के लिए सेना चाहिए, इस वास्ते सेना बढ़ानी चाहिए। लोग कारखाने और मिलों में काम करके थक गये हैं, इसलिए सिनेमा चाहिए। आज तक सिनेमा शहरों में ही था, अब वह हर गाँव में भी चाहिए, इस तरह सोचा जाता है। मतलब गहरा नहीं खोदते हैं। इसमें लंबा सोचा जाता है। इस पर भी कुछ लोग कहते हैं कि इतना लंबा भी नहीं चाहिए ! अपना तमिलनाड़ जैसा छोटा-सा राज्य अच्छा चलेगा, ऐसा वे सोचते हैं !

अपने देश में प्राचीन काल से एक सभ्यता चली आयी है। पश्चिम के लोगों को लंबा-चौड़ा बनाने की आदत हो गयी है। हम क्या कहते हैं ? गहराई पूरी होनी चाहिए और विज्ञान का विस्तार भी जितना हो सके, उतना करना चाहिए। परंतु गहराई में जरा भी कमी न हो। उसके बिना स्वच्छ पानी नहीं मिलेगा, क्योंकि यह अपनी भारतीय संस्कृति की बात है। इसलिए गहराई सधेगी भी। फिर उसके साथ चौड़ाई जितनी चाहिए, उतनी बढ़े। फिलहाल देश तक, फिर बाद में विश्व तक इसे फैलाना है। इसे कहते हैं, आत्मज्ञान और विज्ञान का संयोग। यह है क्रान्ति। **जब तक आत्मज्ञान और विज्ञान का समन्वय नहीं होगा, तब तक क्रांति नहीं होगी।**

आपने पंचवर्षीय योजना बनायी। कल दसवर्षीय योजना भी बनेगी। आप उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं। चीन में भी यह है, रूस में भी यही है और अमेरिका में

www.vinoba.in

भी यही काम चल रहा है। वे आगे-आगे जा रहे हैं। आप उनके पीछे-पीछे जाकर उनका अनुकरण करेंगे, तो जिस दुःख में आज रूस है, जिस दुःख में चीन है, जिस दुःख में अमेरिका है, उसीमें आप भी फँसेंगे!

रूस, अमेरिका, चीन; तीनों देश निर्भय नहीं बने हैं। खाना, पीना आदि अच्छी तरह मिलता होगा, मिलता भी है। परंतु गधे को अच्छी तरह खिलाया, तो भी गधा, गधा ही रहता है, उसे अक्ल नहीं आती। एशिया और चीन गये हुए लोग वहाँ की कहानी सुनाते हैं। कहते हैं, वहाँ गधों की खिलायी-पिलायी बहुत अच्छी चलती है! लेकिन वे वहाँ गधे ही रहते हैं या नहीं? गधों को साफ-सुथरा रखा जा सकता है, उनकी भी खिलायी-पिलायी अच्छी होती है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें अक्ल आती है। हिन्दुस्तान की हालत क्या है? यहाँ खानापीना ठीक नहीं मिलता है, इसलिए हमें आकर्षण होता है—रूस, चीन और अमेरिका का। इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दुस्तान का खानापीना कमजोर है, उसे बढ़ाना चाहिए। परंतु उनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। उसमें भलाई नहीं है—चौड़ाई है। वहाँ खूब खोदना चाहिए। इस वास्ते अपने देश में गहराई कायम रखते हुए फिर चौड़ाई की बात करनी चाहिए। सर्वोदय की यही कोशिश है—भूदान की यह राह है।

गाँठ तोड़नी है

"मैं देह हूँ", यह गाँठ तोड़नी है। "मैं देहरूप नहीं हूँ, आत्मरूप हूँ", यह गहराई होगी। "मैं इसी शरीर में नहीं हूँ", इस वास्ते "दुनिया में जितने शरीर हैं, कुल मेरे ही रूप हैं"—यह होगा तो दूसरी गाँठ खुलेगी। दोनों गाँठें टूटे बिना मानवता का विकास नहीं होगा, मानवता का समाधान नहीं होगी, शान्ति की स्थापना नहीं होगी।

गधा या मानव?

मनुष्य की हालत जानवर से भिन्न है। मानव कुछ व्यापक बनता है। परिवार तक उसका प्रेम फैलता है, समाज को वह अपना रूप मानता है। थोड़ा गहरा भी जाता है, तिलक भी लगाता है, भक्ति का लक्षण भी उसमें दीखता है, वेदान्त का भी अध्ययन करता है। यह गहराई का लक्षण है। क्या गधा कभी तिलक लगायेगा? दूसरे को खिलाने की चेष्टा करेगा? गधा अपना एक ही शरीर मानता है। मनुष्य जरा अपना शरीर छोड़ कर दूसरे के भी शरीर अपने मानता है। शरीर के अंदर की बात भी सोचता है। मनुष्य का आरंभ अपने बच्चे से होता है। बच्चे को वह अपना रूप मानता है। बच्चे को अपनी माँ पर अत्यंत प्यार होता है। क्यों? उसमें केवल स्वार्थ होता है। माता के स्तन को अत्यंत प्यार से वह चूसता है। क्या माँ के लिए त्याग करने को वह तैयार है? माँ का रस चूसने के लिए ही वह अभी तैयार है। माँ का बच्चे पर जो प्यार है, वह सच्चा प्रेम है। वह बच्चे के लिए त्याग करने को तैयार है। उस प्यार से माँ की उन्नति है। लेकिन बच्चा केवल पशु है। पशु से भिन्न बर्ताव उसका नहीं है। उसे दाँत आते हैं, तो भी वह माँ के स्तन को चूसने जाता है। मतलब, वह बच्चा केवल पशु है। समझना चाहिए कि जहाँ मानव का जन्म हुआ, वहाँ उसकी योग्यता पशु के जैसी है। उसका पहला जन्म पशु के बराबरी का है। परंतु जब उसे संस्कार मिलता है, तो वह माता-पिता की सेवा करता है, त्याग करना चाहता है। केवल फल नहीं खाना चाहिए, पेड़ को पानी भी देना चाहिए, यह समझने लगता है। इस तरह माता-पिता द्वारा उसे कर्तव्य का भान कराया जाता है। फिर गुरुसेवा का महत्त्व वह समझने लगता है। फिर गुरु उसे विद्या सिखाता है। देह से मैं भिन्न हूँ, केवल शरीर का भरण करना धर्म नहीं है, शरीर के लिए धर्म नहीं है, धर्म के लिए शरीर है। मेरे शरीर का पोषण हो, इसलिए हिन्दू, मुस्लीम, ईसाई धर्म नहीं है, उन धर्मों के वास्ते शरीर है। उनके वास्ते शरीर का त्याग भी करना जरूरी हो, तो करना चाहिए। धर्म सिखाता है कि शरीर का जोर अपना बल नहीं है, अपना बल है, धर्म। इसके लिए संयम बहुत जरूरी है। संयम सीखता है, तब वह मनुष्य बनता है और उसका दूसरा जन्म होता है। पहले जन्म में वह पशु जैसा ही रहता है। बिना कष्टवाली विद्या हासिल करके बिना कष्ट का जीवन बच्चे को मिलना चाहिए, यह बाप की इच्छा होती है। विद्या भी कम से कम कष्ट में मिलनी चाहिए और जीवन भी कम-से-कम कष्ट का होना चाहिए! अब आप ही बताइये कि यह पहला जीवन है कि दूसरा? गधा भी यह चाहता है कि उसे कम-से-कम कष्ट में खाना मिलना चाहिए। यह कौनसी तालीम है? यह सारी युनिवर्सीटी की तालीम पहले जन्म की है। इससे विकसित गधा बनता है, विकसित मानव नहीं बन सकता!

मानव तब तक नहीं बनेगा, जब तक मनुष्य अपने को दूसरों तक नहीं ले जायगा और दूसरों का अपने में समावेश नहीं करेगा। लंबा-चौड़ा करने की बात सिर्फ मनुष्य जानता है, सो भी नहीं; सिर्फ देशभक्त जानता है, सो भी नहीं, दीमक भी इस तरह काम करती हैं, लाख-लाख दीमक एकत्र होकर काम करती हैं। उनमें नेता भी होते हैं, रानी भी होती है। उसके पीछे-पीछे सब जाते हैं। अपने को व्यापक बनाने की युक्ति उनमें भी है। सुप्रसिद्ध विद्वान मेटलिंग (Matling) ने उन पर एक किताब लिखी है। उसमें वह लिखता है, "मनुष्य समाज को फुफुंदी (दीमक) के जीवन से बहुत सीखने को मिलेगा।" "तेनी" (तमिळ भाषा में शहद की रानी मक्खी) भी बहुत संख्या में इकट्ठा होकर काम करती हैं। सहयोग से उनका समाज काम करता है। दूसरे भी प्राणी यह बात जानते हैं और व्यापक बनना पहचानते हैं। इस वास्ते यह मत-समझिये कि सिर्फ मनुष्य ही यह जानता है।

इसलिए मानव का विकास तब तक नहीं होगा, जब तक वह व्यापक और गहरा नहीं बनेगा।

(नंजुड़ापुरम्, कोइंबतूर, ४-१०-५६)

आत्मावलोकन

(रामप्रसाद सिंह)

अपने मस्तिष्क की रहस्यपूर्ण चालों पर चौकसी रखे बिना सही अर्थों में आत्म-निरीक्षण सम्भव नहीं होता। हमारे नव वयस्क सर्वोदय-सेवकों में भी आत्म-निरीक्षण का अभ्यास तो है, पर अपेक्षित जागरूकता वहाँ कम ही है!

एक ऐसी घटना का संकेत हमें मिला है। १२५० एकड़ भूमि भूदान में देने का संकल्प आज से एक वर्ष पूर्व किसी समर्थ सज्जन ने प्रकट किया था। इस संकल्प के प्रकटीकरण के पहले भी वे समर्थ सज्जन जमीन का एक बड़ा रकबा भूदान में दे चुके हैं। पिछले दिनों हमारी सामूहिक पदयात्रा की एक टोली उन सज्जन की भूमि जहाँ पड़ती है, उसी क्षेत्र में भ्रमण करने गयी। टोली-नायक उन सज्जन के यहाँ पहुँचे। मालूम हुआ, वे भाई अब अधिकांशतः लखनऊ रहते हैं। उनके प्रतिनिधि ने बताया—राजासाहब की नवीन स्वीकृति मिले, तो भूमि मैं दिखला सकूँगा और यदि आप लोग स्वयं उनसे मिलने लखनऊ न जा सकें, तो मैं जब कभी उनसे भेंट करूँगा, उनकी स्वीकृति ले रखूँगा।

उस प्रतिनिधि ने हमारे टोली-नायक को सुबह-शाम करके दो-तीन दिन दौड़ाया भी। तो इतने-मात्र से समझ लिया गया कि संकल्प दिखाऊ था और अब यह सब टालमटूल की बातें चल रही हैं। इतना ही नहीं, वरन् अपने दिमाग में तैयार की हुई इस स्वयंसिद्धि के आधार पर उस भूमि को प्राप्त करने का प्रयास तक बन्द कर दिया गया! पर हम यह भूल गये कि शंकरजी को प्रसन्न करने के लिए शतशत बिल्वपत्र अर्पण करने होते हैं और जनता तो शंकर रूप ही है!

वस्तुतः उन सज्जन में टालमटूल करने के दोष का आभास जो हमें हो रहा था, वह और कुछ नहीं, हमारी अपनी आरामतलबी या मानसिक आलस्य का ही प्रतिबिम्ब था, क्योंकि हम इतने अधिक सम्भ्रान्त बन गये हैं कि अन्यों पर ढोंग का आरोप लगाते हुए हमारी भी सम्भ्रान्तता बनी ही रह जाती है। हमारी दृष्टि और हमारा अभ्यास यदि ऐसा ही रहा, तो निश्चय ही क्रान्ति का सन्देशवाहक होने की योग्यता हम खो बैठेंगे, जागरूकता के अभाव में हमारा आत्म-निरीक्षण औपचारिक मात्र हो जायगा।

श्रद्धेय दादा ने सर्वोदय की जीवन-दृष्टि की व्याख्या करते हुए एक जगह बताया है—सर्वोदय में हर मनुष्य अपनी अपेक्षा दूसरे को श्रेष्ठ समझेगा। इस जीवनदृष्टि को अपनाये बिना हम क्या सर्वोदय साध पायेंगे? आत्म-विकास और आत्म-निरीक्षण भी तो इसके बिना हो पाना संभव नहीं।

अमेरिकन ऋषि एमर्सन की उक्ति है—'जिस किसी भी मनुष्य से मैं मिलता हूँ, उसे अपने से किसी-न-किसी बात में श्रेष्ठ पाता हूँ। यही वजह है कि प्रत्येक से मैं कुछ-न-कुछ सीख लेता हूँ।'

राजासाहब जब तक साफ अस्वीकार न कर दें, हमें मानना चाहिए कि उनका संकल्प एक सत्य संकल्प है, जो अपनी पूर्ति की प्रतीक्षा कर रहा है।

काश, एमर्सन-जैसी ग्रहणशीलता का विकास हम अपने अन्दर कर सकें! आत्म-निरीक्षण—आत्मावलोकन—के लिए दादा की बतायी जीवन-दृष्टि तथा आत्म-विकास के लिए एमर्सन की-सी ग्रहणशीलता निहायत जरूरी है!

---

www.vinoba.in

लायसेन्स नं. ए. ३४ रजिस्टर्ड नंबर ए. ३५४
(पहले से डाक-महसूल दिये बिना भेजने का परवाना प्राप्त)

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

महाराष्ट्र में सामूहिक पदयात्रा

महाराष्ट्र प्रदेश की सामूहिक पदयात्रा का पहला सत्र १ अगस्त को पुणें में समाप्त हुआ था। १८-१९ अगस्त को धुलिया में श्री गोविंदराव देशपांडे, श्री भाऊ धर्माधिकारी और श्री बाबूलाल गांधी ने पश्चिम खानदेश के संस्थाओं से संपर्क साध कर सर्वसंमति से आगामी कार्यक्रम बनाया। श्री कमलाताई जोशी और चंद्राताई किर्लेस्कर ने स्त्री-संगठन किया। त्र्यंबक विद्यामंदिर, नासिक के शिविर में श्री दादा धर्माधिकारी के अमूल्य भाषणों का लाभ महाराष्ट्र के विचारकों एवं कार्यकर्ताओं ने लिया। ३० सितम्बर और १ अक्तूबर को नवापुर तहसील के सर्वोदय-केंद्र, खांडबारा में २०० कार्यकर्ताओं का पूर्वतैयारी का शिविर हुआ। आदिवासियों की और पाटील लोगों की सभाएँ भी हुईं। शिविर में ही १० कार्यकर्ताओं ने सन् '५७ तक का समयदान, ६० कार्यकर्ताओं ने संपत्तिदान और २ कार्यकर्ताओं ने जीवनदान जाहिर किया। आचार्य भिसे ने ५० टोलियों को विक्रय-प्रचारार्थ साहित्य की थैलियाँ दीं। २ अक्टूबर गांधी-जयन्ती के अवसर पर १७५ कार्यकर्ता पश्चिम खानदेश के नंदुरबार, साक्री, नवापुर और तलोदे तहसील के गाँवों में ५० टोलियों में विभक्त होकर चल पड़े। दान-प्राप्ति हो रही है। पता चला कि साक्री तहसील में एक टोली को ७७७ एकड़ भूदान मिला।

तलोदे तहसील में पिंपलस, गोरसे और उंटवड; ये तीन पूरे गाँव ग्रामदान में मिले हैं। पिंपलस ५३६ एकड़ का गाँव है और ३१० लोग रहते हैं। गोरसे के ७५४ एकड़ क्षेत्र में २३१ लोगों की और उंटवड के ४७२ एकड़ क्षेत्र में २१४ लोगों की बस्ती है।

दिल्ली

नरेला निवासी श्री रामस्वरूपजी के नेतृत्व में १२ सितंबर से १ अक्टूबर तक नरेला क्षेत्र में ५ व्यक्तियों की टोली ने २० दिन में ६० गाँवों की पदयात्रा की। श्री ढेबरभाई, श्री वियोगी हरि, श्री कृष्ण नायर आदि व्यक्तियों ने इसमें भाषण दिये। ४० एकड़ के भूदान-पत्र और ६००) रु० सालाना के संपत्ति-दान-पत्र भरे गये। साहित्य-बिक्री हुई। यह टोली १ नवंबर तक नजफगढ़ और मेहरोली हलके के १०४ गांवों का भ्रमण कर रही है।

बिहार

मुजफ्फरपुर जिले के महनार थाने में १५ सितंबर से २६ सितंबर तक पदयात्रा श्री राजेंद्र मिश्र के नायकत्व में हुई। १६ बीघा भूमि का वितरण हुआ। १३ बीघा भूमिदान मिला। १२००) रु. सालाना के २२१ संपत्तिदान-पत्र मिले २४५) रु. की साहित्य-बिक्री हुई। १९ ग्राहक बने।

सहरसा जिले के कार्यकर्ताओं ने विनोबा-जयंती से गांधी-जयंती तक २१ गाँवों में २७७ परिवारों के बीच ५९ एकड़ जमीन का वितरण किया। उनको ३०० संपत्ति-दान-पत्र १४००) रु. सालाना के प्राप्त हुए। २२ एकड़ भूदान मिला। ४० ग्राहक बनाये गये। ११४) रु. की साहित्य-बिक्री हुई। जयंती-समारोह के बाद छातापुर, भीमनगर थानाओं के लिए चार-चार टोलियाँ पदयात्रा की पूर्वतैयारी के लिए निकल पड़ीं।

विंध्यप्रदेश

२१-२२ सितम्बर को दतिया शहर में शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें प्रादेशिक संयोजक पं० चतुर्भुज पाठक के अतिरिक्त प्रांत एवं जिले के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। शिविर का उद्घाटन मध्यभारत भूदान समिति के संयोजक, श्री देवेन्द्रकुमारजी गुप्त ने किया। २४ सितम्बर से १ अक्टूबर तक टोलियाँ तहसील के ग्रामों में पदयात्रा को निकलीं। २ अक्टूबर को प्रदेश के प्रथम ग्रामदानी ग्राम 'रावरी' में ग्रामदान में प्राप्त भूमि का वितरण हुआ। कुल ७२२ एकड़ भूमि का बँटवारा ८८ परिवारों में हुआ। इन परिवारों में ३५ भूमिहीन परिवार हैं, जो अब भूदान-काश्तकार बने। शेष ने स्वामित्व-विसर्जन करके पुनः भूमि प्राप्त की। इस सप्ताह में ५६ दाताओं द्वारा २७९ एकड़ भूमि, ४ दाताओं द्वारा ५।) मन वार्षिक का बीज गेहूँ, १६ दाताओं द्वारा ३१० रु० सालाना का सम्पत्तिदान, एवं मिला। ४५) रु० की साहित्य-बिक्री हुई।

कोरापुट में ग्रामदान

पिछली ११ सितम्बर को विनोबा-जयंती के दिन भूदान के एक प्रमुख कार्यकर्ता श्री रतनभाई अपनी पदयात्रा के प्रसंग में कोरापुट जिले के पदवा, नंदपुर, सिमलीगुडा और पोटंगी थानों के ४० गाँवों में गये। उनकी यात्रा कुल १२० मील की थी, जिसमें उन्होंने २९ सभाएँ की। उन्हें ८ ग्राम दान में मिले।

बीकानेर में भू-जयंती-पखवाड़ा

बीकानेर नगर में प्रभात फेरी, विचार-गोष्ठी, आम सभा और "जमीन" नाटक के कार्यक्रम हुए। डूँगर कॉलेज में सर्वोदय-विचार-मंडल की स्थापना की। श्री पूर्णचंद्र जैन तथा प्रो०नेमिशरण मित्तल ने बुनियादी ट्रेनिंग के अध्यापकों और अन्य शिक्षण-संस्थाओं में भाषण दिये। सुजानदेसर मेले में कार्यकर्ताओं ने विचार-प्रचार किया। १५ सितंबर से श्री जैन के नेतृत्व में १० गाँवों की ४० मील की पदयात्रा एक टोली ने की। यात्रा में ९५ बीघा भूदान, ५१) रु० तथा ९ हल साधनदान के रूप में मिले। १५ युवकों ने १ वर्ष तक प्रति मास ३ दिन ग्राम-सफाई करने का संकल्प किया। ४३) रु० की साहित्य-बिक्री हुई। १९ सितंबर को बीकानेर तहसील के शिरेराँ ग्राम में भूदान-सम्मेलन हुआ। गांधी-जयंती के अवसर पर प्रभात फेरी, श्रमदान तथा सफाई के कार्यक्रम हुए। छात्र-छात्राओं का उत्साह और सहयोग सराहनीय है।

करार-पलामू का नवरात्री-उत्सव

पलामू जिला-भूदान-समिति के संयोजक, श्री बच्चू बाबू के आग्रह से विनोबाजी ने अपने निजी मंत्री श्री दामोदरदासजी को तीन दिन के लिए पलामू जिले में भेजा। ता० १३ अक्टूबर से १६ अक्टूबर तक वे वहाँ रहे। इस बीच बच्चू बाबू के निवास-स्थान, करार ग्राम और डाल्टनगंज में उनके अनेक कार्यक्रम हुए। अपने ग्राम-उत्सव नवरात्री पर दुर्गापूजा के मेले को सामाजिक रूप देकर श्री बच्चू बाबू ने सार्वजनिक सभाएँ कीं और पदयात्राओं में प्राप्त ७००० एकड़ जमीन के दान-पत्र अर्पण किये। हजारों वनवासी और ग्रामीण भाई न सिर्फ स्वागत के लिए उपस्थित थे, बल्कि भूदान-सभाओं के लिए भी प्रतीक्षापूर्वक मौजूद रहे। विजयादशमी को भूमि-वितरण का कार्यक्रम हुआ। नवडिहा और परसावाँ गाँवों के २० परिवारों को ५१ एकड़ जमीन बाँटी गयी। उन्होंने सभा में यह संकल्प भी किया गया कि आने वाले वर्ष में पूरे जिले के बेजमीन किसानों को जमीन दे दी जायगी। अपनी जमींदारी में पड़ने वाले प्रायः सभी गाँवों से उन्होंने भूमिहीनता भी दूर कर दी है। श्री बच्चू बाबू ने आगामी वर्ष का पूरा समय इसीमें लगाने का निश्चय भी प्रकट किया। भूमिहीनों को तिलक करते हुए उनका हृदय गद्गद् हो उठा। उन्होंने कहा, "यह भरत और राम का मिलाप है।" श्री दामोदरदासजी ने अपने भाषण में ग्रामराज का स्वरूप समझाया।

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव	विनोबा	१
२.	अप्रत्यक्ष चुनाव और प्रचार !	,,	२
३.	इलेक्शन : लड़ाई नहीं, खेल	,,	२
४.	शिक्षकों से	रविशंकर महाराज	३
५.	विनोबा की चर्चा	—	४
६.	कुछ अधिक सर्वोदय !	राल्फ रिचर्ड कैथान	५
७.	सर्वोदय-विचार-शिविर : सौराष्ट्र	वसंत भाई व्यास	५
८.	असुर-संहार की प्रक्रिया !	विनोबा	६
९.	सर्वोदय की दृष्टिः		
	१. नयी तालीम पर राजाजी	धीरेंद्र मजूमदार	६
१०.	गीता और अहिंसा	रोहित मेहता	६
११.	सर्व-सेवा-संघके चुनाव-प्रस्तावसे उठनेवाले प्रश्न	धीरेंद्र मजूमदार	७
१२.	करुणा-घन बुद्ध से	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	७
१३.	ग्राम-निर्माण की दिशा में	डा० रविशंकर शर्मा	८
१४.	सिंहावलोकन	विनोबा	८
१५.	विनोबा-प्रवचन-सार	,,	९
१६.	मनुष्य और जानवर कहाँ भिन्न हैं ?	,,	१०
१७.	आत्मावलोकन	रामप्रसाद सिंह	११
१८.	भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण आदि	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव-भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी। फोन नं० १२५८

www.vinoba.in